

बाल निर्माण की कहानियाँ

१२



बाल निर्माण की कहानियाँ

(भाग-१२)



लेखिका

डॉ० आशा 'सरसिज'



प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००



पुनरावृत्ति सन् २०१४ ⌋ मूल्य : ११.०० रुपये

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

लेखक

डा. आशा 'सरसिज'

२०१०

मुद्रक :

युग निर्माण योजना प्रेस,

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

खरा सिक्का, खोटा सिक्का

संजय और शिवा सगे भाई–बहिन थे, पर दोनों के स्वभाव में बहुत अंतर था। संजय बड़ा उद्दंड, जिद्दी और कामचोर था। वह स्कूल में पढ़ाई से जी चुराता था। जब–तब किसी न किसी बच्चे को पीट आता। माता–पिता का कहना न मानता। इसके विपरीत शिवा सबका कहना मानती। मन लगाकर पढ़ती। माँ के साथ काम करती। साथियों से अच्छा व्यवहार करती। बड़ों का आदर करती। संजय के बिगड़ जाने का सबसे बड़ा कारण उसके अभिभावक ही थे। वे कहते–'बेटा खरा सिक्का होता है और बेटी खोटा सिक्का होती है।' उस परिवार में अनेक वर्ष बाद लड़का हुआ था। अतएव दादा–दादी, माता–पिता सभी ने उसे सिर पर चढ़ा रखा था। बात मुँह से निकलने की देर होती कि उसकी जिद पूरी कर दी जाती। संजय की आदत बन गई कि वह अपना हठ पूरा करके ही रहता। यदि सीधे–सीधे काम न चलता तो वह रोने–पीटने और पैर पटकने लगता।

'प्रारंभ में तो बच्चा है, बड़े होने पर अपने आप समझदारी आ जाएगी।' यह सोचकर उसके अभिभावकों ने उसकी बुरी आदतों पर ध्यान नहीं दिया, पर बड़ा होने पर संजय उनके लिए बहुत बड़ी समस्या बन गया। पढ़ाई–लिखाई में उसका बिल्कुल मन न लगता। एक–एक कक्षा में वह तीन–तीन, चार–चार वर्ष पड़ा रहता। तब भी जैसे–तैसे उसे उत्तीर्ण कराया जाता। वह सारे दिन खेलता, बच्चों से मार–पिटाई करता। उसके माता–पिता समझा–समझाकर हार गए कि वह मन लगाकर पढ़े, पर उस पर कोई असर ही नहीं होता। उसके सामने पुस्तक खुली रहती और वह इधर–उधर देखता रहता। घर पर पढ़ाने के लिए अलग से शिक्षक की नियुक्ति भी की गई, पर वह भी बेकार। बच्चा ही न पढ़ना चाहे तो शिक्षक भी क्या करे ?

अब संजय के पिता उसके लिए बड़े ही चिंतित रहते थे। वह चाहते थे कि थोड़ा बहुत तो पढ़ ही जाए, जिससे बड़ा होकर अपनी

जीविका का निर्वाह कर सके । अब वह सोलह वर्ष का हो चुका था, उसकी मूँछें निकलने लगी थीं, पर अभी भी वह छठी कक्षा में ही था । उससे दो वर्ष छोटी शिवा दसवीं में आ गई थी । शिवा पढ़ने में भी होशियार थी । स्कूल से भी उसे कोई न कोई पुरस्कार मिलता ही रहता था । अभिभावकों ने बेटी की सदा उपेक्षा की थी, पर अब उसके गुण उन्हें आकर्षित करने लगे थे । वे शिवा की प्रशंसा करते तो संजय चिढ़ उठता और किसी न किसी बहाने शिवा को तंग करता, उसे मारता । शिवा इसे भी चुपचाप सह जाती । कभी भी माता–पिता से भाई की शिकायत न करती । वह जानती थी कि अंत में वे भाई का ही पक्ष लेंगे ।

समय के साथ–साथ संजय और शिवा दोनों बच्चें बढ़ते गए संजय के साथी भी उसके जैसे थे । पढ़ाई से जी चुराने वाले, इधर–उधर ऊधम मचाने वाले, शरारत करने वाले थे । अब संजय ने उनके साथ रहकर सिनेमा देखना, पान खाना, सिगरेट पीना नारेबाजी–हुल्लड़बाजी करना आदि ऐसे अनेक काम भी सीख लिए थे । पढ़ने वाले अच्छे बच्चे सदा संजय और उसके साथियों से दूर ही रहते, क्योंकि किसी से भी झगड़ना, मारपीट करना इनके बाँये हाथ का खेल था । एक बार छात्र संघ के चुनाव के अवसर पर संजय और उसके गुट ने विद्यालय में खूब हुल्लड़ मचाया, तोड़–फोड़ और मारपीट की । परिणाम यह हुआ कि प्राचार्य ने उन्हें कुपित होकर विद्यालय से निकाल दिया ।

संजय के पिता ने बहुत प्रयास किया, पर उसे विद्यालय में पुनः प्रवेश न मिल सका । अन्य दूसरे विद्यालयों में भी अनुशासन हीनता की रिपोर्ट के कारण उसे नहीं लिया गया । परिणाम यह हुआ कि अब संजय को घर बैठना पड़ा ।

संजय के पिता अब बूढ़े हो चले थे । नौकरी से भी वे पद निवृत्त हो गए थे । संजय की चिंता उन्हें हर समय दुःखी किए रहती थी । विद्यालय से यों अपमानित होकर निकाले जाने तथा गलत रास्ते

पर चलने की प्रेरणा देने वाले साथियों का साथ छूट जाने पर संजय भी अब कुछ गंभीर हो गया था । पड़ोसियों और रिश्तेदारों की शंका भरी निगाहें और उलाहने सहते–सहते अब वह अपनी गलतियाँ भी समझने लगा था ।

संजय के पिता प्रायः बीमार रहने लगे थे । एक दिन उन्होंने संजय को अपने पास बुलाया और कहा–'देखो संजय ! आज तक तुमने मेरी अधिकतर बातें यों ही टाली हैं और उसका फल भुगत ही रहे हो । अब मैं अंतिम बार तुमसे कुछ कहने का प्रयास कर रहा हूँ । यों बेकार घर बैठने या घूमने से क्या लाभ है ? यदि तुम चाहो तो तुम्हें छोटी सी दुकान ही खुलवा दूँ । मैं तो अब बूढ़ा हो गया हूँ, कभी भी मेरा भगवान के यहाँ से बुलावा आ सकता है । नौकरी के समय जो थोड़ा–बहुत पैसा जोड़ा है, उससे शिव का विवाह भी करना है । हमारे पास न अपना मकान है न और कोई संपत्ति । मैंने तुम बच्चों के लिए ही अपना सारा पैसा खर्च कर दिया । न जाने कितने अरमानों से तुम्हें पाला–पोसा था ।' कहते–कहते संजय के बुड्ढे पिता की आँखों में आँसू भर आए, पर शीघ्र ही उन्होंने अपने आपको नियंत्रित कर लिया और गंभीरतापूर्वक बोले–'तुम अच्छी प्रकार से सोच–समझकर दो–चार दिन में अपना निर्णय मुझे बता देना ।'

'कहीं ऐसा न हो कि मेरे मरने के बाद तुम दाने–दाने के लिए मोहताज हो जाओ ।' यह कहकर संजय के पिता ने करवट बदल ली ।

संजय की आँखों के आगे अपने भविष्य का चित्र नाच उठा । उसे पिताजी की बातों में आज पहली बार सच्चाई दिखलाई दी । उसने दूसरे ही दिन पिताजी से कह दिया कि वह दुकान खोलने के लिए तैयार है ।

संजय के पिता ने थोड़ी पूँजी लगाकर उसके लिए छोटी सी परचून की दुकान खुलवा दी । साथ ही यह भी कह दिया कि उनके पास जो कुछ धन था, वह उन्होंने लगा दिया है । संजय को लाभ–हानि सहने के लिए स्वयं तैयार रहना होगा ।

अब संजय सारे दिन अपनी छोटी सी दुकान पर बैठा रहता । उसकी समझ में यह बात भी आ गई कि धन कमाना कितना कठिन है । पढ़ने के समय पिता का धन बिगाड़ने का अब उसे बहुत ही अधिक दु:ख था ।

शिवा सदैव अच्छे अंकों में उत्तीर्ण होती गई । वह बैंक की प्रतियोगिता परीक्षा में बैठी और वहाँ भी उत्तीर्ण हुई । अब वह बूढ़े माता–पिता का हाथ बँटाने लगी । घर के खर्च की बहुत कुछ जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर उसने वृद्ध और रोगी पिता की चिंता दूर कर दी थी । माता–पिता, पड़ौसी–रिश्तेदार सभी शिवा की प्रशंसा करते न अघाते थे ।

शिवा ने बैंक अधिकारी के रूप में कुशलता से काम करते हुए अपने अधिकारियों और सहकारियों के मध्य स्नेह और सम्मानपूर्ण स्थान बना लिया था । एक बार शिवा के यहाँ कार्य के निरीक्षण के लिए क्षेत्रीय अधिकारी आए । वे शिवा के शील, स्वभाव, कार्य कुशलता तथा व्यवहार से मुग्ध हो उठे । उन्होंने शिवा के घर का पता पूछा और दूसरे दिन उसके पिता के पास जाकर अपने इंजीनियर पुत्र के लिए उसे वधू बनाने की इच्छा व्यक्त की । उनकी बात सुनकर शिवा के पिता प्रसन्नता से गद्‌गद् हो उठे । उनकी आँखों से आँसू बहने लगे और उनके मुँह से अनायास निकल पड़ा–"बेटी खरा सिक्का निकली और बेटा खोटा सिक्का ।"

शिवा की ससुराल वालों की इच्छानुसार जल्दी ही एक सादगीपूर्ण समारोह में उसका विवाह हो गया । अब घर की जिम्मेदारी संजय पर आ गई थी । पिता की पेंशन घर का खर्च चलाने के लिए पर्याप्त न थी । संजय भी अब गंभीर हो गया था । वह स्थिति समझने लगा था । वह सारे दिन परिश्रम करता तब कहीं जाकर कुछ आय होती । संजय यही सोचता कि वह यदि माता–पिता का कहना मानकर मन लगाकर पढ़ता तो आज वह शिवा की भाँति अच्छी नौकरी पर होता । स्वयं सुखी–संतुष्ट रहता और सभी से आदर पाता,

पर अब पछताने से क्या होता था ? जीवन का सबसे बहुमूल्य समय 'विद्यार्थी काल' उसने व्यर्थ ही गँवा दिया था । अब तो वह परिस्थिति के अनुसार जीवन चलने के लिए विवश था । उसे बार-बार रामचरितमानस की यह पंक्ति याद आती है-'का वर्षा जब कृषि सुखाने, समय चूकि पुनि का पछिताने ।'

सच है कि बचपन से किशोरावस्था तक का समय ही भविष्य को उज्ज्वल बनाने वाले गुण और शिक्षा प्राप्त करने का समय है । इसे यों ही निकम्मेपन में गँवा देने पर जीवन भर कष्टों को सहना और असंतुष्ट जीवन बिताते हुए पछताना ही शेष रह जाता है । अच्छे बच्चे पूरी तन्मयता से आगे बढ़ते और ऊँचा उठने के प्रयासों में जुटे रहते हैं ।

भूल का सुधार

विनोद अपने माता-पिता का अकेला बेटा था । वह सात बहिनों के बाद हुआ था । उसके पिता बेटे के लिए मनौती मनाते-मनाते बुड्ढे हो गए । तब कहीं जाकर उसका मुँह देख पाए, पर जब विनोद तीन वर्ष का ही था उनकी मृत्यु हो गई । विनोद की माँ पर मुसीबतों का पहाड़ ही टूट पड़ा । इतने बड़े परिवार के लिए भोजन-वस्त्र जुटाने में वे अधमरी हो गईं । वे सुबह से रात तक कई घरों में जाकर काम में जुटी रहतीं । तब कहीं जाकर सारे परिवार को रूखा-सूखा खाना मिलता ।

विनोद की माँ ने आठ-दस वर्ष के अंदर जैसे तैसे करके सभी लड़कियों का विवाह कर दिया । अब परिवार में रह गए बस विनोद और उसकी माँ । माँ सोचती थीं कि मेरा बेटा बुढ़ापे की लाठी बनेगा । जब तक वह समर्थ नहीं हो जाता, बस तब तक ही उन्हें काम में पिलना पड़ रहा है । परंतु वे भूल गईं थीं कि बालक का निर्माण यों ही नहीं हो जाया करता । उसके लिए तो माँ को साधना करनी पड़ती है । जो माता-पिता बच्चों के साथ लापरवाही बरतते, उन्हें अच्छे संस्कार नहीं देते, उनके बच्चे बिगड़ ही जाते

हैं । विनोद के साथ भी यही हुआ । माँ तो सुबह होते ही काम पर चली जाती थीं । वह गली के गंदे बच्चों के साथ खेलता कूदता । यह देखकर माँ ने उसे स्कूल में भर्ती करा दिया, पर वहाँ भी उसका मन न लगा । विनोद जब तब स्कूल से भागने का प्रयास करता । कभी-कभी वह मास्टरजी की आँख बचाकर स्कूल से निकल भी आता । उसकी माँ तो घर में रहती न थी अतएव बेटे के बारे में उन्हें कुछ भी पता न लगता । यदि कोई पड़ोसी कुछ कहता भी तो वे कह-कह कर टाल देतीं कि बच्चा है, ऊब गया होगा तो चला आया । उन्होंने कभी विनोद से नहीं पूछा कि स्कूल से क्यों भागकर आया ? यही नहीं, माँ ने विनोद को इतनी अधिक छूट दे रखी थी कि जो उसका मन आता करता । वह बहुत ही जिद्दी और ढीठ हो गया था ।

माँ की छूट के कारण विनोद बुरे बच्चों की संगति में पड़ गया । चोरी करना, बात-बात में झूठ बोलना, गाली गलौज करना स्वभाव बन गया । पढ़ने-लिखने में वह बिलकुल फिसड्डी था । वह एक-एक कक्षा में दो-दो, तीन-तीन वर्ष पढ़ता । कभी उसकी माँ स्कूल में जाकर अध्यापकों की खुशामद करतीं, कभी रुपए देतीं तब कहीं जाकर उत्तीर्ण होता ।

विनोद की बुरी आदतों से उसके पड़ौसी भी परेशान थे । वह जब तब उनके बच्चों को बिना किसी कारण के पीट देता । वह उनके घर जाता तो छिपाकर कोई चीज उठा लाता । पड़ौसी जब उसकी माँ से शिकायत करने जाते तो वह उल्टे उनसे ही झगड़ने लगतीं कि वे बच्चे पर लांछन लगाते हैं । अतएव पड़ौसी यह कोशिश करते कि विनोद उनके घर कभी न आए, न ही वे अपने बच्चों को उसके साथ खेलने की आज्ञा देते । वे अच्छी तरह जानते थे कि बुरे की संगति में रहकर उनका बच्चा भी बिगड़ जाएगा । इस प्रकार विनोद और उसकी माँ से उनके पड़ौसी भी बहुत कम संबंध रखते थे ।

विनोद की माँ ने शायद ही कभी उसे कोई अच्छी बात सिखाई थी । वह उसे अच्छा खिलातीं, अंधा लाड़ करतीं, बस । इसका परिणाम यह हुआ कि विनोद धीरे–धीरे बड़ा दुर्गुणी बनता गया । अच्छा खाना, घूमना, झगड़ा करना, चोरी करना आदि ही उसे अच्छे लगते थे । जो माँ रात–दिन खून पसीना एक करके उसके लिए सुख–सुविधाएँ जुटा रही थीं, उनकी भी उसे परवाह न थी । विनोद जब तब माँ से भी झगड़ लिया करता । अब वह कोई बच्चा न रह गया था। वह बारह वर्ष का किशोर बन चुका था । वह अपनी माँ का हाथ बँटा सकता था, उनके दुःख–मुसीबत में भागीदार बन सकता था, पर यह तो दूर रहा वह माँ से कभी आदरपूर्वक बातें भी न करता । वह हमेशा उससे पैसे माँगता रहता और न देने पर कभी–कभी माँ पर हाथ भी उठा देता ।

जब विनोद ने माँ पर भी हाथ उठाना प्रारंभ कर दिया तो उसकी आँखें खुलीं । 'ओह ! मेरा बेटा आज मुझे ही मारता है । मेरे दुःख से इसे कोई मतलब नहीं, केवल पैसे का सगा है यह । क्या इसलिए मैंने इसे इतनी मुसीबतें सहकर बड़ा किया था ?' यह विचार हर समय उनके मन को मथते रहते । अंदर ही अंदर घुलते रहने का परिणाम यह हुआ कि उन्हें टी. बी. का रोग हो गया । विनोद की माँ ने रोगशैया पकड़ ली और कुछ दिन बीमार रहने के बाद वे मर गयीं ।

माँ की मृत्यु के बाद विनोद को माँ का मूल्य पता लगा । वह दाने–दाने को तरस गया । पड़ौसियों ने उससे कुछ दिन सहानुभूति दिखलाई फिर नाता तोड़ दिया । आखिर वे उसे कब तक खिलाते ? विनोद की बुरी आदतों के कारण वे लोग उसे अपने घर में भी न घुसने देना चाहते थे ।

विनोद अब बहुत परेशान था । स्कूल जाना तो छूट ही चुका था । किराया न दे पाने के कारण मकान मालिक ने उसे कमरे से निकाल दिया । तभी संयोगवश एक पड़ौसी के कहने सुनने पर उसे

पास की चाय की दुकान पर नौकरी मिल गई, पर वहाँ सप्ताह भर काम करके ही विनोद परेशान हो गया । उसे न तो काम करने की आदत थी और न ही किसी की बात सुनने की । जब कि उसका मालिक उससे पूरे चौदह घंटे काम लेता और जब तब डाँटता भी रहता । विनोद ने यह नौकरी छोड़ दी । अब उसके पास न खाने का ठिकाना था न रहने का । कुछ दिन उसने भीख माँगी फिर वह जेबकतरों के साथ रहने लगा । उन्होंने कुछ ही दिनों में उसे जेब काटने में बड़ा ही कुशल भी बना दिया ।

विनोद अब और भी आलसी और विलासी बन गया । जब भी पैसे की जरूरत होती तो मोटा आदमी देखकर वह जेब काट लेता । मुफ्त का पैसा वह खुले हाथों खर्च करता । अब उसे शराब और सिगरेट की भी लत पड़ गई थी ।

बुरा काम करने वाला व्यक्ति अधिक समय तक दण्ड से बच ही नहीं सकता । एक दिन पुलिस ने विनोद को जेब काटते हुए रंगे हाथों पकड़ लिया । विनोद उसके आगे गिड़गिड़ाने लगा, छोड़ देने के लिए बार बार प्रार्थना करने लगा । उसने सुन रखा था कि पकड़े जाने पर पुलिस बुरी तरह पिटाई करती है और तरह तरह की यातनाएँ देती है । विनोद उसकी कल्पना करके ही सिहर उठा, किंतु विनोद की कोई प्रार्थना काम न आई । सिपाही ने भली–भाँति पिटाई की और घसीटता हुआ थाने ले गया ।

पुलिस अधिकारी का चेहरा देखकर वह सहसा ही कुछ चौंक उठा । 'रघु भैया....अब की बार माफ करो....।' वह हकलाते हुए बोला और उसके पैरों में गिर पड़ा । अधिकारी भी पहचानने का प्रयास करते हुए ध्यान से उसे देखने लगा । वह दुःख और आश्चर्य के साथ बोला–'विनू तुम.....इस स्थिति में ।'

अब विनोद शर्म से गढ़ गया । वह सिर झुकाकर, आँखें नीची करके उनके सामने खड़ा हो गया । पुलिस अधिकारी ने उसे गाड़ी में बैठने का इशारा किया । विनोद चुपचाप गाड़ी में बैठ गया । वह सोच

रहा था कि इन्होंने मुझे पहचान तो लिया है । दया करेंगे तो छोड़ देंगे, नहीं तो जेल जाना निश्चित है ।

जीप जल्दी ही अधिकारी के सुंदर बँगले के सामने रुकी । 'आओ !' कहकर पुलिस अधिकारी ने विनोद को अपने पीछे आने का आदेश दिया । विनोद धड़कते दिल से आगे बढ़ा ।

'बैठो विनोद !' अधिकारी ने उसे सामने पड़ी कुर्सी की ओर इशारा करते हुए कहा । वह कहने लगे–'तुम इतने अधिक गिर चुके हो । कभी सोचा है तुमने अपना भविष्य ? क्या तुम अपराध करके पुलिस की निगाहों से बच पाओगे ? बार बार सजा मिलेगी, बार बार जेल जाओगे । लोग तुम्हारे नाम पर थूकेंगे, छिः ऐसा जीवन भी कोई जीवन है ।'

विनोद का ध्यान आज पहली बार अपने भविष्य की ओर गया । अभी तक उसने केवल वर्तमान के विषय में सोचा था । उसे अपने जेबकट साथियों का भी ध्यान आया, जो समाज से बहिष्कृत होकर रहते थे । बार बार पुलिस की यातनाएँ सहते थे । 'ओह ! क्या मेरा जीवन भी वैसा बनेगा ?' यह सोचकर विनोद सिहर उठा । उसे याद आने लगा कि यही रघुनाथ भैया उसे कितना ही समझाया करते थे कि वह खूब पढ़े–लिखे, अच्छा बालक बने । विनोद की माँ रघुनाथ भैया के यहाँ चौका बर्तन करती थीं । विनोद कभी उनके यहाँ अपनी माँ के साथ चला जाया करता था । रघुनाथ भैया यदि घर होते तो उसे जरूर अपने पास बुलाते, उसकी पढ़ाई–लिखाई की बात करते और कभी कभी पढ़ने लिखने का सामान भी दे देते । विनोद को भी वह अच्छे लगते । वह उनका सम्मान करता, उन्हीं रघुनाथ भैया के सामने वह आज अपराधी के रूप में बैठा है । यह सोचकर विनोद के मुँह से आवाज भी नहीं निकल रही थी ।

रघुनाथ की आवाज से विनोद का चिंतन भंग हुआ । वे कह रहे थे–'अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है । अभी भी सोच लो । यदि तुम सम्मानपूर्वक समाज में रहना चाहो, कुछ काम करना चाहो तो वह भी

संभव है । नहीं तो मुझे फिर सरकारी कर्त्तव्य का पालन करना होगा

विनोद को इतने दिनों के गिरहकट जीवन से यह अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि मेहनत–मजदूरी करके रूखा–सूखा खाकर इतना अधिक अच्छा है । चोरी करने पर, जेब काटने पर तो सभी से बच–छिपकर रहना होता है । हर समय पकड़े जाने का भय बना रहता है । मुफ्त का पैसा भी यों ही चला जाता है । उससे कभी सुख शांति मिलना संभव नहीं । अतएव वह बोल उठा–'भैया ! मैं अब ईमानदारी से काम करने के लिए तैयार हूँ । एक बार मुझे मौका दो ।'

रघुनाथ ने थोड़ी देर के लिए कुछ सोचा फिर कहने लगे–'हमारे आफिस में चपरासी की जगह खाली है । एक दो महीने में नियुक्ति हो जाएगी । तब तक यदि तुम चाहो तो मैं किसी के घर तुम्हारे काम करने की व्यवस्था करवा दूँ । अच्छा तो यही रहेगा कि तुम आज से ही काम शुरू कर दो । मेहनत का कोई भी काम बुरा नहीं हुआ करता ।''

रघुनाथ के सामने विनोद को कुछ कहना अच्छा न लगा । उसने अपनी स्वीकृति दे दी । रघुनाथ ने तुरंत अपने किसी साथी को फोन किया । फिर वह विनोद से बोले–'आज शाम तक तुम यहीं रहो । शाम को तुम्हारे मालिक आकर तुम्हें ले जाएँगे, तब तक खाओ–पीओ, आराम करो ।'

विनोद रघुनाथ के प्रति कृतज्ञता से भर उठा । उसने आगे बढ़कर रघुनाथ के पैर छू लिए और कहने लगा–'आपका उपकार मैं जीवन भर नहीं भूलूँगा ।'

रघुनाथ उसके कंधे पर हाथ रखते हुए बोले–'मुझे विश्वास है विनोद कि तुम पूरी मेहनत और ईमानदारी से काम करोगे और किसी शिकायत का अवसर न दोगे ।'

'जी ! इसके लिए मैं पूरी–पूरी कोशिश करूँगा ।' विनोद सिर झुकाकर बोला ।

विनोद ने अपनी बात का पालन किया । उसने बड़ा परिश्रम

किया, उसका मालिक उससे बड़ा प्रसन्न रहता । रघुनाथ भी जब तब उससे मिलते रहते । कुछ महीने बाद विनोद की नौकरी उन्हीं के दफ्तर में लग गई । विनोद अब अपने आप से संतुष्ट था । जेबकतरा होने पर हर समय जो डर और तनाव मन में रहता था उससे वह मुक्त था । उसे अब काम में लगे रहने की भी आदत पड़ गई थी । पर हाँ, जब तब उसे यह बात कचोटती थी कि यदि रघुनाथ भैया का कहना पहले ही मान लेता, अच्छी तरह पढ़-लिख जाता तो आज वह भी अच्छी नौकरी पर होता । वह सोचता काश ! मेरी माँ भी रघुनाथ भैया की माँ की तरह समझदार होतीं तो मुझे बुरे कामों से रोकतीं, मेरी पढ़ाई-लिखाई पर ध्यान देतीं । मुझे मनमानी करने की छूट देकर बिगड़ने न देतीं तब मैं भी पढ़-लिख जाता और अच्छे पद पर होता । इस तरह वह प्रायः पछताता रहता था । अपनी भूल प्रायश्चित करने के लिए वह परिश्रम और ईमानदारी से काम करता था ।

विनोद दफ्तर से लौटकर रघुनाथ के यहाँ जाता । वहाँ वह अपनी इच्छा से घर के छोटे-मोटे काम कर दिया करता । बाजार से सामान ला देता, ऐसा करके उसे आंतरिक प्रसन्नता होती । उसके परिश्रम और ईमानदारी से प्रसन्न होकर रघुनाथ ने उसे अपनी कोठी में ही एक कमरा दे दिया । धीरे धीरे विनोद ने रघुनाथ के घर का बहुत-सा कार्य सँभाल लिया और वह उनके परिवार के बहुत निकट आ गया ।

व्यक्ति जैसी संगति में रहता है उसका प्रभाव गहराई से उसके चेतन-अचेतन मन पर पड़ता है । इसलिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि जिन व्यक्तियों के साथ हम रहते हैं उनके आचार विचार कलुषित न हों । रघुनाथ की संगति में रहकर न केवल विनोद के भावों का ही परिष्कार हुआ अपितु अपनी सभी प्रकार की प्रगति के लिए भी उसमें नया उत्साह जगा । आलस्य, कामचोरी, ठगी, बुरे व्यसन आदि को उसने पूरी तरह छोड़ दिया । व्यक्ति जब तक दृढ़ता से संकल्प नहीं करता तभी तक वह बुराई

नहीं छोड़ पाता । दृढ़ प्रतिज्ञा के लिए कोई अवांछनीय आदत छोड़ना कठिन नहीं होता ।

विनोद में अपनी शैक्षिक योग्यता बढ़ाने की भी उमंग उठी । रघुनाथ के यहाँ बच्चों को पढ़ाने के लिए मास्टर साहब आते थे । उसने मास्टर साहब को तैयार कर लिया कि बच्चों को पढ़ाकर थोड़ा–सा समय उसे भी दे दें । यह क्रम अभी एक ही महीना चला था कि रघुनाथ को पता लग गया । उन्होंने मास्टर साहब से पूछा और यह जानकर प्रसन्न हुए कि विनोद अपने २०० रुपए के वेतन से पचास रुपए प्रति मास मास्टर साहब को पढ़ाने के लिए देता है । मास्टर साहब से उन्हें पता लगा कि विनोद की समझ और लगन अच्छी है । वह पढ़ने में श्रम करके जल्दी ही आगे बढ़ भी रहा है । रघुनाथ ने मास्टर साहब को निर्देश दिया–'आप विनोद को भलीभाँति पढ़ाएँ और हाईस्कूल की परीक्षा दिलाएँ ।'

आगे बढ़ने की धुन में डूबे विनोद ने दो ही वर्ष में हाईस्कूल द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण कर लिया । साथ ही रघुनाथ के निर्देशन में विभागीय परीक्षाएँ भी देता रहा । वह चपरासी से पुलिस का सिपाही बना और फिर थानेदार बन गया । जिस दिन उसकी थानेदार के पद पर नियुक्ति हुई, विनोद बड़ा प्रसन्न था । रघुनाथ भैया भी बड़े संतुष्ट और खुश थे । विनोद का सुधार, उसकी प्रगति उनकी ही प्रेरणा का फल थी । विनोद अपना नियुक्ति पत्र उन्हें थमाते हुए बड़ा भावुक हो गया और उनसे लिपट गया । रघुनाथ उसे गले से लगाते हुए बोले– 'विनोद ! मुझे विश्वास है कि तुम दूसरों के सामने सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करोगे । रिश्वत और बेईमानी से तुम सदा दूर रहोगे । तुम अपने कर्त्तव्य का पूरी शक्ति से पालन करोगे ।'

विनोद उनके पैर छूते हुए बोला–'भैया ! यही आपके प्रति मेरी सच्ची श्रद्धा होगी ।'

विनोद जहाँ भी रहा वहीं उसने पूरी ईमानदारी, निर्भीकता और सावधानी से काम किया । जल्दी ही वह लोकप्रिय हो गया । अपनी

प्रशंसनीय सेवाओं और कार्य कुशलता के कारण थोड़े ही समय में वह पुलिस अधीक्षक बन गया । उसकी प्रसिद्धि सर्वत्र फैलने लगी । सभी जान गए कि विनोद सज्जनों–जनसेवियों के लिए सुशील और विनम्र है, परंतु अपराध करने वालों के लिए बड़ा कठोर और न्यायी है । जहाँ अपराधी तत्व उसके नाम से ही डरते थे वहाँ ईमानदार और शांतिप्रिय नागरिक चाहते थे कि विनोद की नियुक्ति उनके नगर में हो जाए जिससे कि वहाँ शांति और सुदृढ़ व्यवस्था स्थापित हो ।

विनोद की चर्चा चलने पर रघुनाथ भैया गर्व से भर उठते हैं । वे उसका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए दूसरों को भी यही समझाया करते हैं कि व्यक्ति दृढ़ संकल्प कर ले तो अपने आपको पूर्णतः बदल सकता है । पारस व कल्पतरु हमारी मनःशक्ति ही है । उसकी महत्ता और उपयोगिता समझ लेने पर व्यक्ति का कायाकल्प हो जाता है । उसका सदुपयोग करके ही जीवन में पग–पग पर विभूतियाँ मिला करती हैं ।

नन्हें जासूस

उन दिनों आगरा के समाचार पत्रों में ठगी के उस विचित्र ढंग की खूब चर्चा थी । ठगी का एक विशेष तरीका अपनाया गया था । एक गिलहरी किसी व्यक्ति के ऊपर चढ़ जाती, कोई व्यक्ति गिलहरी को भगाने के बहाने आता और उसे आदमी पर से हटाता । जब गिलहरी और उसे भगाने वाला चले जाते तब जिस पर गिलहरी चढ़ी थी उसे पता लगता कि उसकी जेब कट चुकी है या पर्स निकल गया है । एक दो बार यह घट्ना घटी, पर किसी ने गिलहरी के चढ़ने और लुटने से कोई संबंध न जोड़ा । जब चार–पाँच बार इसी तरह की घटनाओं की पुनरावृत्ति हुई तो व्यक्तियों का ध्यान इस ओर गया ।

उस दिन अखबार पढ़ते पढ़ते प्रदीप भी इस समाचार को पढ़कर कुछ सोचने लगा । उसने पास बैठे मित्र सतीश को यह समाचार सुनाया और पूछा–'क्या तुम्हे इस घटना में कोई विशेष बात भी लगती है ?'

सतीश ने कुछ पल सोचा और कहा–'तुम्हीं बताओ कि तुम्हें क्या लगता है ?'

प्रदीप कहने लगा–'मुझे तो लगता है कि यह गिलहरी पालतू है । किसी ठग ने इसे पाला है । मोटा आदमी देखकर वह उसके ऊपर गिलहरी को छोड़ देता है । व्यक्ति का ध्यान गिलहरी की ओर जाता है और दोनों हाथों से गिलहरी को भगाता है । इतनी देर में ठग अपना काम बना लेता है । गिलहरी पालतू होने के कारण उसी व्यक्ति के पास भागकर छिप जाती होगी ।'

प्रदीप की बात सुनकर सतीश कुर्सी से उछलते हुए बोला–'वाह भई वाह ! क्या खोज की है तुमने भी ? जासूस पिता के योग्य पुत्र बनोगे, प्रशंसा करनी चाहिए तुम्हारी बुद्धि की ।'

'पगले हो तुम तो । अभी प्रशंसा की क्या बात हुई ? अभी तो अनुमान ही लगाया है । प्रशंसा तो तब होगी जब हम सच्चाई को सामने लाएँ ।' प्रदीप ने कहा ।

'वह तुम पुलिस के लिए छोड़ दो ।' सतीश कहने लगा ।

'पुलिस तो इस विषय में लगता है कि कुछ लापरवाह है । उसे पकड़ना होता तो अब तक पकड़ चुकी होती । फिर यह ठग अधिक दिनों तक ठगी का यह तरीका न अपनाएगा । अपने पकड़े जाने के डर से जल्दी ही यह और दूसरी जगह पर चला जाएगा ।'' प्रदीप बोला ।

'तुम्हारी बात तो सच लगती है ।' सतीश कहने लगा ।

प्रदीप के पिता खुफिया विभाग में जासूस थे । जब वह घर आकर अपराधियों को पकड़ने की बातें सुनाते तो प्रदीप बहुत प्रभावित होता । उसका किशोर मन भी वैसा ही करने के उत्साह से भर उठता । दो–चार बार उसने इस प्रकार के छोटे मोटे काम करके पिता की शाबाशी भी पाई थी । प्रदीप अब पिता को बिना बताए अचानक कोई बड़ा काम करके उनसे बहुत–सी प्रशंसा पाना चाहता था । उसने सतीश से कहा–'चलो ! पुलिस से पहले इसको पकड़ने के लिए हम प्रयास करें

'कैसी बात करते हो, हम क्या कर पाएँगे ? यह काम तो बड़ों के करने का है ।' सतीश कहने लगा ।

'तो हम क्या अब बच्चे हैं ? सोलह वर्ष के हो चुके हैं । अपने आपको गर्व से निहारते हुए प्रदीप बोला । फिर वह आगे कहने लगा– 'सतीश ! आयु के कम या अधिक होने से कुछ भी नहीं होता । जिसके मन में संकल्प होता है, प्रयास में दृढ़ता होती है वही अपने काम में सफल होता है । साहसपूर्वक किसी कार्य को करने में जुट पड़ो तो अंत में सफलता मिल ही जाती है ।'

यह बात बिल्कुल सच है, परंतु तुम करोगे भी क्या ?' सतीश बोला ।

प्रदीप ने उसे अपनी योजना समझाई और साथ देने के लिए तैयार कर लिया । उसने कहा कि यदि असफल भी हो जाएँ तो क्या हानि है । प्रयास करना अपने हाथ की बात है । सफलता–असफलता तो बाद की बात है ।

प्रदीप और सतीश दोनों मित्र इस कार्य के लिए तैयार हो गए । माता–पिता या अन्य किसी से उन्होंने कोई चर्चा न की । दोनों सुबह ही खाना खा–पीकर, अच्छे कपड़े पहन कर घर से निकल पड़ते । उनके हाथ में एक सुंदर–सा बैग रहता, जिसे देखने से लगता कि उसमें माल होगा । दोनों मित्र भीड़–भाड़ वाले बाजार में घूमते । दो दिन तो दोनों को निराश होना पड़ा । तीसरे दिन वे और भी अच्छी वेशभूषा में निकले । उन्हें देखकर लगता था कि वे किसी धनी संपन्न परिवार के लड़के है । रास्ते में थोड़ी–थोड़ी देर बाद सतीश जोर जोर से प्रदीप से कहता था–'भाई ! बैग जरा सँभाल कर रखो ।'

एक ठग बहुत देर से उनके पीछे लगा था । वह देख रहा था कि वे बार बार बैग सँभाल रहे हैं और उस पर ध्यान दे रहे हैं । 'लगता है इसमें कोई कीमती सामान है ।' ठग ने मन ही मन में कहा । फिर वह कोई अच्छा सा मौका देखकर उनका बैग छीनने की योजना बनाने लगा ।

सतीश और प्रदीप अभी तिराहे के मोड़ पर पीपल के पेड़ तक ही पहुँचे थे कि एक गिलहरी प्रदीप के कंधे पर चढ़ गई । लगता ऐसा था मानो वह पीपल के पेड़ से कूदी हो । दोनों मित्र अब चौकन्ने हो गए । सतीश दो–चार कदम पीछे हट गया । प्रदीप दोनों हाथों से गिलहरी को भगाने लगा । तभी उस व्यक्ति ने मौका देखकर प्रदीप के हाथ से बैग झटक लिया और भागने लगा । गिलहरी भी प्रदीप के कंधे से कूदकर उस व्यक्ति के पीछे दौड़ चली । परंतु वह व्यक्ति कुछ आगे बढ़े, इससे पहले ही सतीश और प्रदीप ने जाकर उसे कसकर पकड़ लिया । उसने छूटने का बहुत प्रयास किया था परंतु उन दोनों मित्रों की मजबूत पकड़ के सामने उसका प्रयत्न व्यर्थ ही रहा ।

धीरे धीरे वहाँ भीड़ जमा हो गई । 'गिलहरी चोर' पकड़ा गया– यह खबर जल्दी ही आसपास फैल गई । व्यक्ति उसे देखने के लिए इकट्ठे होने लगे । कई व्यक्तियों ने तो उसकी अच्छी खासी पिटाई कर डाली । सतीश और प्रदीप ने बड़ी कठिनाई से भीड़ को रोका । भीड़ उस चोर को धकेलती हुई थाने की ओर ले गई ।

थाने में बहुत पिटाई होने पर उस ठग ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया । उसने ठगी का प्रायः वही तरीका अपनाया था जैसा कि प्रदीप ने अनुमान लगाया था । थानेदार ने प्रदीप और सतीश की उनके इस साहस भरे बड़े कार्य के लिए बहुत–बहुत ही प्रशंसा की ।

प्रदीप के पिताजी को जब बेटे की बहादुरी का पता लगा तो वे बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने इस कार्य के लिए प्रदीप से मनचाहा पुरस्कार माँगने की बात कही । प्रदीप की माँ बेटे के इस कार्य से आश्चर्यचकित थीं और बेटे की इस साहस भरी बहादुरी पर उन्हें गर्व हो रहा था ।

'नगर किशोर संस्था' की ओर से प्रदीप और सतीश का सम्मान किया गया । जिलाधीश ने उन्हें पुरस्कार दिया और आशा व्यक्त की कि वे भविष्य में भी ऐसे कार्यों से समाज को गौरवान्वित करते रहेंगे ।

अपनी सूझबूझ और साहस से किशोर भी वह कार्य कर लेते हैं जिन्हें करना बड़ों के लिए संभव नहीं होता ।

गूँगा-बहरा बालक

अनु के होने पर उसके माता–पिता ने बहुत खुशियाँ मनाई थीं । वह उनका पहला बच्चा था । उसके निर्माण के लिए उनके मन में अनेकों कल्पनाएँ थीं, पर अनु के तीन–चार महीने का होते–होते वे कल्पनाएँ धूमिल पड़ने लगीं । माँ का ध्यान गया कि बच्चे को पुकारने पर कोई प्रभाव उस पर नहीं पड़ता । उनने एक–दो महीने प्रतीक्षा की और डाक्टर के पास ले गईं । उसके श्रवण केंद्र में मस्तिष्क से ही विकृति है, अतएव वह यंत्रों की सहायता से भी न सुन सकेगा । साथ ही डाक्टर ने यह भी बतलाया कि बालक के गूँगे होने की भी संभावना हो सकती है ।

उस दिन घर आकर अनु की माँ खूब रोयीं । उनकी सारी मधुर कल्पनाएँ क्षण भर में ही छिन्न भिन्न हो गई थीं । वह भगवान से शिकायत कर रही थीं कि बच्चा भी दिया तो कैसा । उन्हें ऐसी अनुभूति हो रही थी कि ऐसे बच्चे को जन्म देकर मानो उन्होंने कोई पाप किया है । वह सोच नहीं पा रही थीं कि कैसे अपने सहेलियों के आगे सिर उठाकर रह पाएँगी । 'गूँगे की माँ' इस शब्द को सुनने की कल्पना ही उसे सिहरा देती थी । वह प्रतिदिन भगवान से यही प्रार्थना करतीं–'हे प्रभु ! बच्चे को बहरा तो बना दिया है, अब गूँगा न बनाना ।'

अनु की माँ बड़ी उत्सुकता से बच्चे के थोड़ा बड़े होने की प्रतीक्षा में लगी, जिससे कि पता लग सके कि वह बोल पाता है या नहीं । 'माँ' शब्द सुनने के लिए उनके कान प्यासे थे, पर यह उनकी प्रतीक्षा ही रही । अनु डेढ़ वर्ष का होने पर भी कोई शब्द नहीं बोल पाता था । उसके मुँह से 'गे–गे' की अस्पष्ट सी ध्वनि निकलती थी । डाक्टर को दिखाने पर भी वही पता चला था कि बच्चा गूँगा है, उसे इशारों से समझाना पड़ेगा ।

उस दिन डाक्टर के पास से आकर तो अनु की माँ निढाल सी कुर्सी पर बैठ गईं । उन्हें अपना सारा सुख निस्सार लग रहा था । वह बार-बार यही सोच रही थीं कि मुझे ऐसा बच्चा क्यों मिला जो न बोल सकता है, न सुन सकता है । माता-पिता अपने बच्चों का निर्माण करते हैं और गर्व से उसे दूसरों को दिखाते हैं । परंतु वह तो इस बालक के साथ कहीं सिर उठाकर भी न जा पाएगी । गूँगा-बहरा बच्चा ज्यों-ज्यों बड़ा होगा त्यों-त्यों समाज के उपहास का ही पात्र बनेगा ।

अनु को लेकर उसकी माँ घंटों बैठी सोचती रहतीं । उनका किसी काम में मन न लगता । धीरे-धीरे वे बीमार पड़ीं और चारपाई से लग गईं । अनु के पिताजी बहुत दिनों से यह देख रहे थे । अब उनसे न रहा गया, वे बोले-'मैं बहुत दिनों से तुमसे कुछ कहना चाह रहा था, पर चुप रहा । अब और अधिक चुप नहीं रह सकता । अनु के विषय में बहुत सी अनावश्यक बातें सोच-सोच कर तुम अपने आप को बरबाद किए ले रही हो । इससे क्या लाभ होगा ? इस स्थिति में तो यही उपाय करना होगा कि इस बच्चे को किसी अनाथाश्रम या गूँगे-बहरों की किसी संस्था को भेज दिया जाएगा ।

अनु की माँ यह सुनकर जड़ सी हो गईं । अनु के पिताजी चार-छः संस्थाओं के नाम बताकर यह कहकर उठ गए कि सप्ताह भर में सोच कर बता दो कि अनु को कहाँ भेजा जाए ।

अनु को इतनी आसानी से छोड़ा जा सकता है ? यह तो उसकी माँ ने कभी सोचा ही न था । वह जी कड़ा करके अपने आप से कहतीं-'न यह मेरी आँखों के सामने रहेगा, न हर समय घुटूंगी । कभी-कभी वहीं जाकर देख आया करूँगी ।'

पर दूसरे ही पल जब वह अनु की ओर देखतीं तो उनका मन काँप उठता, निर्णय डोलने लगता । दो वर्ष का स्वस्थ, गोरा, निश्छल शिशु मानो अपनी बड़ी बड़ी आँखों से पूछता-'माँ ! मेरा क्या अपराध

है ?' और तब अनु की माँ हाथ बढ़ाकर बच्चे को हृदय से लगाकर बार-बार चूमतीं । 'अनु चला जाएगा ।' यह सोचकर ही उनके कलेजे में हूक सी उठती ।

एक सप्ताह इसी मानसिक ऊहापोह की स्थिति में निकल गया । अनु के चले जाने की जब वे कल्पना करतीं तो उद्विग्न-सी हो उठतीं । उनका मन उन्हें धिक्कारता-'छिः ! माँ होकर भी तुम बच्चे को यों भेज दोगी...। फिर दूसरों को ही क्या पड़ी जो स्नेहपूर्वक उसका लालन-पालन करेंगे ।'

अनु की माँ ने दृढ़तापूर्वक निश्चय किया कि वह बेटे को अपने पास ही रखेंगी, स्वयं उसे प्रशिक्षण देंगी । अनु के पिताजी यह सुन कर बड़े प्रसन्न हुए और बोले-'प्रसन्न मन से बच्चे का पालन करो, जिससे उसका स्वस्थ विकास हो पाए । बच्चा गूँगा-बहरा है तो क्या ? उसमें संवेदना और समझ तो है । हमारी भावना और व्यवहार का बच्चे पर गहरा प्रभाव पड़ता है । हम इस प्रकार अनु का पालन पोषण करें कि इसमें किसी प्रकार की कुंठा या हीन भावना न आने पाए । चार-पाँच वर्ष बाद तो बच्चे को विकास के लिए किसी संस्था में भेजना ही होगा ।'

अनु की माँ के मन की सारी शंकाएँ अब धुल-पुछ गई थीं । वह स्वस्थ और प्रसन्न मन से धीरे-धीरे मानो अपने आप से ही कह रही थीं-'गूँगे-बहरों में भी प्रतिभा होती है । उनमें भी हेलन-केलर नामक जैसी भी होती हैं । भगवान ने एक शक्ति नहीं दी तो क्या ? मैं अपने बच्चे की और शक्तियों का विकास करूँगी । उसे आगे बढ़ाने की पूरी कोशिश करूँगी ।'

अब अनु की माँ की भावनाएँ बच्चे के प्रति बिलकुल बदल चुकी थीं । उसे लेकर उसके मन में न कोई कुंठा थी न क्षोभ । उन्हें लगता कि उनका उत्तरदायित्व और बढ़ गया है, जिसका उन्हें बड़ी ही कुशलता से पालन करना है अन्यथा उनके पढ़े-लिखे होने का क्या लाभ ?

अनु की माँ को गूँगे–बहरों से संबंधित जानकारियाँ और साहित्य जहाँ भी मिलता प्राप्त करतीं । वे बच्चों को सही प्रशिक्षण मिल पाए– इसे लिए गूँगे–बहरों की संस्थाओं से भी निरंतर संपर्क रखतीं । लगन और परिश्रम कभी व्यर्थ नहीं जाया करते । कुछ ही समय में उनके परिणाम दिखलायी देने लगे । अनु में बोलने और सुनने की शक्ति न थी, पर उसकी बुद्धि तीव्र थी । माँ की बात को वह बहुत जल्दी सीख लेता था । तीन वर्ष होते होते वह माता–पिता के इशारे समझने लगा और इशारों से ही उन्हें अपनी बात समझाने लगा । घर में दौड़ते–भागते, छोटी–मोटी शरारतें और बाल सुलभ क्रीडाएँ करते प्यारे से बच्चे को देखकर माता–पिता प्रसन्न होते । उन तीनों के बीच में संकेत की भाषा का विकास हो गया था, जिसे तीनों ही अच्छी तरह समझ लेते थे । अब भाषा का व्यवधान भावों के आदान प्रदान में बाधक न था ।

अनु की माँ उससे शब्द बुलवाने का बराबर प्रयास करती रहती थीं । धीरे–धीरे बच्चा कुछ शब्द भी बोलने लगा, पर उसके शब्द अस्पष्ट से होते थे जिन्हें घर वाले ही समझ सकते थे ।

अनु की माँ उसके साथ तरह तरह के खेल खेलतीं, जिससे उसे साथी का अभाव अनुभव न हो । अनु को वे घर से बाहर अधिक न जाने देतीं । उनके परिचित और घनिष्ठ दो–तीन समझदार परिवार थे । अनु वहीं जाता था, कभी अकेला तो कभी माँ के साथ । जहाँ से उपेक्षा भरा व्यवहार पाने की संभावना होती वहाँ अनु को लेकर उसकी माँ जाती ही नहीं थीं । अनु के साथी भी गिने–चुने थे । पड़ौस के तीन चार बच्चे ही उसके साथ खेलने के लिए आते थे । अनु की माँ ने उन बच्चों को अच्छी तरह समझा दिया था कि किसी बात को लेकर अनु को चिढ़ाएँ और खिजाएँ नहीं । गूँगा या बहरा होना या और कोई शारीरिक विकार होना तो ईश्वर की देन है । ऐसी बातों को लेकर कभी किसी का उपहास नहीं करना चाहिए । बच्चे समझदार थे । वे सदा अनु से स्नेह और सहानुभूति का व्यवहार

करते थे । खेल के समय स्वयं अनु की माँ भी रहतीं । वे बच्चों को बैडमिंटन, टेबिलटेनिस, फुटबाल, खो–खो आदि तरह–तरह के खेल खिलातीं । अनु सभी में रुचिपूर्वक भाग लेता ।

अब अनु दस वर्ष का हो गया था । वह स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मस्तिष्क का बालक खेलों में सदा आगे रहता । किसी बात को वह जल्दी ही सीख लेता था । माता–पिता और साथियों के प्रति उसका व्यवहार बड़ा विनम्र और स्नेहपूर्ण था । अनु के व्यक्तित्व में कोई कुंठा या हीन भावना नहीं थी । उसकी माँ का प्रयास भी यही था । अनु के निर्माण के लिए उन्होंने अपने आप को ही भुला दिया था ।

अनु के माता–पिता ने निश्चय किया कि अब बालक को किसी संस्था में भेजा जाए, जिससे उसे प्रशिक्षण मिल पाए और वह भी भविष्य में स्वावलंबी बन सके । उन्होंने उसे पास ही शहर में गूँगे–बहरों की प्रसिद्ध संस्था में भर्ती कर दिया । अनु की माँ ने उसे प्यार से समझा दिया था कि वहाँ वह पढ़ेगा–लिखेगा और अच्छा बच्चा बनेगा । प्रारंभ में तो अनु को माँ से अलग रहना बहुत बुरा लगा, पर धीरे धीरे दूसरे बच्चों के साथ उसका मन लगने लगा ।

अनु के माता–पिता नियमित रूप से हर महीने उससे मिलने जाते थे । वे उसके प्रशिक्षकों से उसके कार्य व्यवहार के विषय में पता लगाते रहते थे । अनु के शिक्षक उससे प्रसन्न थे । वह तीव्र बुद्धि बालक था, जल्दी ही सीख लेता था । शिक्षकों और साथियों के साथ व्यवहार बहुत ही संतोषजनक था । उसके प्रशिक्षक उसके उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएँ व्यक्त करते थे ।

अनु के पिताजी प्रत्येक ग्रीष्मावकाश में और दूसरी लंबी छुट्टियों मे उसे घर ले आते थे, जिससे उनके मन में भाई–बहिनों के लिए कोई ईर्ष्या की भावना न आए । दोनों बच्चों के बड़े होने पर उन्हें भी बड़े भाई का आदर सम्मान करने की शिक्षा दी गई थी । अनु जब छुट्टियों में घर आता तो उसे बड़ा अच्छा लगता । माता–पिता, भाई–

बहिन सभी से उसे भरपूर प्यार और सम्मान मिलता । इसका परिणाम यह हुआ कि अनु का स्वस्थ विकास हुआ । वह पूरी तन्मयता से शिक्षा प्राप्ति में जुट गया । उसकी सदा यही कोशिश रहती कि अच्छे से अच्छा परिणाम लाए जिससे कि उसके माता–पिता प्रसन्न हों ।

स्कूल और कालेजों में अनु को अनेकों पुरस्कार मिले । अब वह बीस वर्ष का युवक हो गया । शिक्षा, क्रीड़ा, दस्तकारी आदि विविध क्षेत्रों में वह निपुण माना जाता था । वह अब तीन भाषाएँ जानता था और अस्फुट शब्दों में बोल भी लेता था जिसे उसके साथी और परिवार के व्यक्ति समझ लेते थे । यही नहीं उसकी माँ और शिक्षकों ने उसमें छिपे साहित्यकार के गुणों को भी पहचाना था और उसका विकास किया था । उन्होंने अनु को कविताएँ लिखने की ओर प्रोत्साहित किया । उसने उदीयमान कवियों में जल्दी ही अपना स्थान बना लिया । विविध पत्र पत्रिकाओं में भी उसकी रचनाएँ छपने लगीं । हेलन केलर के जीवन से अनु को बहुत प्रेरणा मिलती थी । गूँगी, बहरी और अंधी होकर भी इस महिला ने जीवन को जिस जीवट आत्म विश्वास से जिया था वह अनु के लिए प्रेरणासूत्र था । अनु में भी आत्म विश्वास और आशावादिता की भावनाएँ थीं । उससे बात करके कभी किसी व्यक्ति को यह अनुभव नहीं हुआ कि उसमें गूँगे–बहरे होने के कारण किसी प्रकार की हीनता या निराशा है । उसके हँसमुख, आत्म–विश्वासी, सौम्य–विनम्र व्यक्तित्व से कोई प्रभावित हुए बिना न रहता था ।

अनु की शैक्षिक योग्यताएँ और अच्छे चरित्र से प्रभावित होकर उसके प्रशिक्षकों ने उसी संस्था में अनु की नियुक्ति कर ली । अनु की माँ चाहती थीं कि वह घर पर रहे, उसे कोई व्यवसाय करा दिया जाए । अनु ने माँ से कहा–'माँ ! मेरी इच्छा है कि मेरा जीवन समाज के उन व्यक्तियों की सेवा के लिए अर्पित हो, जिन्हें सब अपंग कहते हैं और अयोग्य समझते हैं । ऐसे व्यक्तियों के मन में से जीने का उत्साह जगा पाऊँ, उनकी छिपी प्रतिभाओं को विकसित कर पाऊँ तभी मेरी शिक्षा की सार्थकता है ।'

अनु की बात सुनकर माँ की आँखों में प्रसन्नता के आँसू भर उठे । सहसा ही उन्हें वह दिन याद आ गया जब वह डाक्टर के यहाँ से यह पता करके लौटी थीं कि अनु बोल–सुन नहीं सकेगा । उस समय की अपनी हताशा की भावना भी उन्हें अच्छी तरह याद हो आई । उन्होंने अनु के सिर पर हाथ फिराते हुए कहा–बेटे ! वही तुम्हारा वास्तविक कार्यक्षेत्र है । मेरी शुभकामनाएँ तुम्हारे साथ हैं । ईश्वर से प्रार्थना है कि तुम्हारा जीवन समाज के इन व्यक्तियों में प्रेरणा और उत्साह भरे ।

माता–पिता की आज्ञा लेकर अनु ने प्रसन्नतापूर्वक अपना कार्य दायित्व ग्रहण किया । अनु के आने से संस्था को एक सुयोग्य और आत्मविश्वासी कार्यकर्त्ता मिला । सभी ने उसका स्वागत किया । अनु ने अपनी प्रतिभा से प्रशिक्षण में कई मौलिक विधियाँ जोड़ीं । वह अपंग बच्चों में उत्साह जगाता था, साहस भरता था । जिसे भी तनिक हताश या उदास देखता तो समझाता कि ईश्वर ने तुम्हें कम शक्तियाँ दी हैं– यह सोचकर यदि तुम घुलते रहोगे तो जो कुछ पाया है वह भी व्यर्थ चला जाएगा । जो कुछ तुम्हें मिला है उसके विकास और उत्थान में जुट जाओ । तुम्हारे अंदर न जाने कितनी शक्तियाँ छिपी पड़ी हैं, उन्हें पहचानो और आगे बढ़ो । अपने आपको दुर्बल समझना बड़ा पाप है ।

अपने शरीर के कारण निराश होते बच्चों को अनु के वाक्य, नया उद्‌बोधन देते । अनु का सबसे बड़ा प्रशिक्षण उनके लिए यही था कि वे अपने आपको हीन न समझें, निराशा और कुंठा की भावना से दूर रहें । वह बच्चों को समझाता था–'तुम जीवन में निराश और कुंठित हुए तो समझ लो कि तुमने अपनी उन्नति के सारे द्वार अपने आप बंद कर लिए ।'

अनु विद्यार्थियों के लिए आदर्श था। उसका व्यवहार और चरित्र उन्हें भी वैसा ही बनने की प्रेरणा देता था । जो भी उसके संपर्क में आता उससे बहुत प्रभावित होता । छात्रों के मन मे उसके लिए अपार श्रद्धा थी । अनु अपने संस्थान का सबसे अधिक लोकप्रिय प्रशिक्षक

बन गया था । सच है कि सफलता आत्मविश्वासी और दृढ़ संकल्प वाले व्यक्ति के चरण चूमा करती है ।

कुसंगति का परिणाम

राजेश के पिता गरीब थे । वे एक बैंक में चपरासी थे । उन्हें बहुत कम वेतन मिलता था । उसी में से वे अपने परिवार का पालन करते थे । राजेश के परिवार में पाँच सदस्य थे । माता–पिता और वे तीन भाई–बहिन । राजेश के छोटे भाई–बहिन सीधे और समझदार थे । वे कभी माता–पिता से हठ न करते । जैसा भी खाने और पहिनने को मिल जाता उसमें खुश रहते । परंतु राजेश बहुत ही हठी और अविवेकी था । वह बड़ा होते हुए भी अपने परिवार की स्थिति के विषय में नहीं सोचता था । स्कूल में वह अपने अन्य साथियों को अच्छा पहिनने और खाने की चीजों में पैसे बिगाड़ते देखता तो वह घर आकर माँ से जिद करता कि उसे भी वैसे ही कपड़े सिलवाएँ, जेब खर्च के लिए पैसे दें । माँ बेचारी कहाँ से पैसे लातीं ? वह राजेश को झिड़क देतीं ।

राजेश की कक्षा में चार लड़कों का एक समूह था । वह झुण्ड अधिकतर कैंटीन में बैठा रहता और कुछ न कुछ खाता–पीता ही रहता । राजेश सोचता कि इनके पिता बहुत अमीर होंगे जो यह इतना पैसा खर्च करते हैं । वह इन लड़कों को ईर्ष्या की दृष्टि से देखता । वे लड़के जब तब राजेश को अपनी ओर घूरते हुए पाते । उन्होंने आपस में सलाह करके उसकी ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाया । वे जानते थे कि राजेश बैंक के चौकीदार का लड़का है । उसकी सहायता से मजे से काम बन सकता है । ये लड़के आवारा, मुफ्तखोर और अपराधी प्रवृत्ति के थे । परंतु राजेश उन्हें समझ न सका । वह खुशी–खुशी उनके समूह में सम्मिलित हो गया ।

अब राजेश की रही सही पढ़ाई भी छूट गयी । कक्षा में सबसे पीछे बैठकर शरारत करते रहना, स्कूल से भाग जाना, पैसे

बिगाड़ना, दूसरों से झगड़ा करना आदि उन लड़कों की सारी आदतें राजेश में भी आ गयीं ।

कुछ दिन ऐसे ही चलता रहा । वे लड़के राजेश पर पैसे खर्च करते रहे । राजेश ने कभी यह जानने का प्रयास नहीं किया कि वे फिजूलखर्ची के लिए इतने रुपए लाते कहाँ से हैं और उस पर इतने रुपए वे क्यों खर्च कर रहे हैं ? उन लड़कों ने भी राजेश से घर से रुपए लाने की बात न कहीं । वे उसकी आर्थिक स्थिति से परिचित थे ।

राजेश और उसके साथियों ने पूरा वर्ष यों ही घूम-घूमकर बर्बाद कर दिया । जब वार्षिक परीक्षाएँ एकदम निकट आ गईं तो वे उनके लिए चिंतित हुए । पूरे वर्ष की छूटी हुई पढ़ाई एकदम तो की नहीं जा सकती थी, इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि इस बार नकल की जाएगी ।

वार्षिक परीक्षा में राजेश और उसका पूरा समूह परीक्षा भवन में पुस्तक और नकल के कागज लेकर जाता । निरीक्षकों के माना करने पर वह झगड़ा करने के लिए तैयार हो जाता और धमकियाँ देता । यही नहीं, नकल न करने देने पर उन्होंने एक शिक्षक की पिटाई भी कर दी । उसकी अनुशासनहीनता और असभ्य व्यवहार से तंग आकर प्रधानाचार्य ने उन सबको परीक्षा से बहिष्कृत कर दिया ।

राजेश ने घर आकर अपने अभिभावकों को कुछ न बताया । पर राजेश के पिता को कहीं से सारी बातें पता लग गईं । उन्हें राजेश पर बहुत जोर का गुस्सा आया । वे सोचने लगे कि ऐसे बेटे से तो बेटा न होना ही अच्छा है । घर आते ही वे राजेश से बोले-'पिता की कमाई तुमने खूब उड़ा ली, पर अब मुझ पर कृपा करो । तुम स्वयं युवा हो, कमाने योग्य हो । आज से घर में तुम्हारे लिए कोई भी स्थान नहीं है । जहाँ मन चाहे वहाँ रहो और कमाओ और खाओ ।

राजेश के पिता की बातें उसकी माँ को बहुत बुरी लगीं, पर

उस समय वे कुछ न बोलीं । राजेश को आशंका तो रहती थी कि कहीं पिताजी को कालेज की बातें पता न लगा जाएँ । वह उस समय बिना कुछ बोले अपने मित्रों के पास पहुँच गया । माँ उसके पिताजी से कहने लगीं–'आप भी जवान बेटे से इस तरह की बातें करते हैं । कहीं गुस्से में आकर घर से निकल ही गया तो ।'

'निकल जाए तो अच्छा है । ठोकर खाकर अक्ल तो आएगी इसे । तुम्हें घर बैठे क्या पता इसकी करतूतें । तुम भी सुनोगी तो आश्चर्य करोगी ?'

'आखिर क्या हुआ ऐसा ?' माँ ने पूछा । तब पिताजी ने राजेश की कालेज की सारी की सारी बातें विस्तार से माँ को बतायीं । यह सब सुनकर वे भी बहुत दुखी हुईं । बोलीं–'राजेश को मैं समझा कर देखती हूँ ।'

राजेश बहुत रात गए मित्रों के यहाँ से लौटा । उन्होंने उसे सिखा दिया था कि पिताजी घर से निकालते हैं तो परवाह मत करो । हम सब भी तो तुम्हारे साथ हैं । कोई न कोई व्यवस्था हो ही जाएगी । तुमको माता–पिता के आगे न झुकना है और ना ही उनकी खुशामद करनी है ।

राजेश की माँ बड़ी दुखी मन से उससे बोली–'राजेश ! तुमसे हमें ऐसी कभी उम्मीद न थी । हमने अपनी खून पसीने की सारी ही कमाई तुम्हारी पढ़ाई में लगाई जिससे कि तुम अच्छे बनो, पर तुमने उसका कोई थोड़ा मूल्य भी न समझा । क्या इसीलिए तुम कालेज जाते हो ?

राजेश माँ की बात सुनकर गुस्से से बोला–'तुम अनपढ़ हो, क्या जानो पढ़ाई की बातें ?'

अब माँ को भी गुस्सा आ गया । वे कहने लगीं–'हाँ ! मैं तो बिलकुल अनपढ़ हूँ, गँवार हूँ, कुछ भी नहीं जानती और तुम जो कालेज में खुराफातें करते हो, शिक्षकों की पिटाई करते हो, नकल करते हो, ये सब पढ़े–लिखे और बुद्धिमानों के करने योग्य काम हैं न ?'

'तुम्हें तो बस बेकार की बातें करनी आती हैं ।' कहकर राजेश माँ पर झल्ला उठीं । पिताजी ने भी जब कभी इस विषय में बातें करनी चाहीं तो वह उन्हें टाल देता और उल्टा-सीधा उत्तर देता । उसे तो मित्रों की सलाह ही सबसे अच्छी लगती थी ।

राजेश के पिता उससे बहुत नाराज थे । वे उसे घर से निकाल रहे थे । परंतु उसकी माँ ने जैसे-तैसे बीच बचाव करके राजेश को घर में रहने दिया ।

तभी राजेश के मित्रों ने एक दिन बैंक लूटने की एक योजना बनाई । उन्होंने राजेश पर दबाव डाला कि वह किसी भी रात को पिता के पास रखा हुआ बैंक की चाभियों का गुच्छा उन्हें लाकर दे दे । सुबह होने से पहले ही वे चाभियाँ ज्यों की त्यों वापस कर देंगे । राजेश या उसके पिता को कोई परेशानी न होगी । साथ ही उन्होंने राजेश को भी बैंक लूटने की योजना में सम्मिलित कर लिया । यह तय हुआ कि जितना पैसा मिलेगा उसे बराबर आपस में बाँट लेंगे । राजेश ने भी उनसे मना नहीं किया । उसे भी फिजूलखर्ची के लिए पैसा चाहिए था ।

एक रात राजेश ने पिताजी के पास से बैंक की चाभियाँ चुराकर चुपचाप अपने मित्रों को दे दीं । उन्होंने रात में वैसी ही दूसरी चाभियाँ तुरंत बनवा लीं और वे चाभियाँ राजेश को पुनः वापिस कर दीं ।

राजेश और उसके मित्रों ने कुछ हथियार और दूसरी चीजें भी इधर उधर से जुटा लीं । एक रात उन्होंने बैंक पर हमला बोल दिया । नकली चाभियाँ तो उनके पास थीं ही । उनकी सहायता से कमरे खोल डाले । वे अध्यक्ष के कमरे में पहुँचकर सेफ तोड़ने लगे, जिससे खजाने की चाभी आदि प्राप्त कर सकें ।

खटपट सुनकर चौकीदार सजग हो गया । उसने बैंक का बाहर का ताला खुला देखा तो सारा का सारा मामला समझ गया । उसने तुरंत पुलिस और मैनेजर को फोन कर दिया । कुछ ही देर में पुलिस दौड़ी आई । खतरे का आभास पाकर लड़के छत पर चढ़कर भागने का प्रयास

करने लगे । एक छत से दूसरी छत पर कूदते हुए राजेश का पैर फिसल गया और वह धड़ाम से नीचे गिरा तथा बेहोश हो गया ।

राजेश और उसके सभी मित्रों को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया । पुलिस चौकी पर सभी की खूब पिटाई की गई और जेल भेज दिया गया । ऊपर से गिरने के कारण राजेश के कूल्हे और घुटने की हड्डियाँ टूट गयी थीं । वह जेल में पड़ा पड़ा कराहता हुआ अपने किए पर पछताता रहा ।

इस मध्य उसके पिता का भी स्थानांतरण दूसरे शहर में हो गया । वे राजेश से इतने अधिक नाराज थे कि उससे मिलने भी नहीं गए । ना ही उन्होंने राजेश के पास उसकी माँ या भाई–बहिनों को जाने दिया । उन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया–'जो भी राजेश से मिलने जाएगा तो मैं उसे घर में रहने दूँगा और ना ही जीवन भर उसका मुँह देखूँगा । राजेश मेरे लिए और तुम्हारे सभी के लिए मर चुका है ।'

उनकी यह घोषणा सुनकर राजेश की माँ सहम गईं । वह अच्छी तरह से जानती थीं कि पति जो कह रहे हैं उसका दृढ़ता से पालन करेंगे अतएव वे भी उस समय चुप हो गयीं ।

राजेश जेल से छूटकर जब घर आया तो वहाँ कोई न था । ना ही आसपास किसी को पता था कि वे कहाँ गए हैं । बस इतना ही पता लगा पाया कि उसके पिता का किसी दूसरे शहर में स्थानांतरण हो गया है ।

अब राजेश अपने आप को बिलकुल अकेला और असहाय अनुभव कर रहा था । उसके दोस्त, जिन्होंने उसे सब्जबाग दिखाए थे अब उसके पास झाँकते तक न थे । भूख से बेचैन होकर वह भीख माँगने लगा । सड़क पर घिसट–घिसट कर वह भीख माँगता । जो कुछ रूखा–सूखा मिल जाता था तो उसे ही खाकर फुटपाथ पर सो जाता ।

एक दिन जब वह भीख माँग रहा था तो एक पढ़े–लिखे युवक ने उसे टोका–'भाई ! तुम जवान हो, स्वस्थ हो फिर भी भीख माँगते हो, सबके सामने हाथ पसारते हुए तुम्हें क्या अच्छा लगता है ?

उसकी बात सुनकर राजेश की आँखों में आँसू भर आए । उन्हें

छिपाता हुआ वह बोला–'यदि स्वस्थ ही होता तो क्यों भीख माँगता ? मेरे पैर एक दुर्घटना में बिलकुल ही बेकार हो गए हैं । अब मैं न खड़ा हो सकता हूँ और न चल ही सकता हूँ । क्या काम करूँगा मैं ?'

युवक कहने लगा–'बैठे–बैठे ही कोई काम कर सकते हो और कुछ नहीं तो जूतों पर पालिश ही कर सकते हो । कोई काम छोटा है न बुरा । मुफ्त का खाना ही सबसे बुरा है ।'

यह कहकर युवक आगे बढ़ गया । उसकी बात राजेश के हृदय को बेध गई । उसकी आँखें छलछला उठीं । 'भिखारी के जीवन में तो पग–पग पर यही अपमान झेलना होगा ।' उसने अपने आप से कहा ।

राजेश स्वयं को धिक्करने लगा । उसने स्वावलंबी बनने का संकल्प किया । उसने दो दिन तक कुछ नहीं खाया । भीख में आए रुपयों से उसने बूट पालिश और ब्रुश मँगवा लिया । अगले ही दिन से वह एक बैंक के पास पेड़ की छाया में जाकर बैठ गया और जूतों पर पालिश करनी प्रारंभ कर दी । धीरे–धीरे उसका काम चलने लगा । सादा पहिन और खा सके, इतना पैसा उसे मिल जाता था ।

इस दुर्घटना ने राजेश का व्यवहार और स्वभाव एकदम बदल दिया था । अब वह बड़ा गंभीर और विनम्र बन गया था । सभी से वह अच्छा व्यवहार करता और मीठा बोलता । उसके ग्राहक उसके काम और व्यवहार से खुश होते । जब भी राजेश स्कूल–कालेज जाने वाले बच्चों को देखता तो उसके मन में कसक उठती । अपनी मूर्खता के कारण ही उसने उज्ज्वल भविष्य को गँवा दिया था । वह स्कूल जाने वाले बच्चों को सदा यही समझाता–'बच्चो ! हमेशा मन लगाकर पढ़ना । कभी स्कूल से न भागना । पढ़ाई से जी न चुराना । तभी तुम बड़े आदमी बनोगे और आदर पाओगे ।'

होनहार बालक

भारत के पूर्व में इम्फाल नामक एक प्रसिद्ध स्थान है । यह हाथ के पंजे की तरह फैली असम की पहाड़ियों पर बसा एक रमणीक नगर है । इसी इम्फाल क्षेत्र में ही वीर सपूत सुभाषचंद्र बोस की आजाद हिंद फौज ने भारत को स्वाधीन बनाने के लिए अंग्रेजों की सेना पर सबसे बड़ा आक्रमण किया था । भारत चीन युद्ध के समय भारतीय सेनाओं ने चीन के धूर्त आक्रमणकारियों को यहीं परास्त कर आगे खदेड़ दिया था ।

चार वर्ष का लाला गांगटे इसी वीरभूमि इम्फाल का निवासी था । लाला था तो छोटा बच्चा, पर उसकी सूझबूझ बड़ी पैनी थी । कभी कभी तो वह ऐसी बात कहता कि उसके माता–पिता भी आश्चर्यचकित रह जाते । लाला के माता–पिता बड़े समझदार थे । उसकी प्रतिभा के विकास का उन्होंने पूरा पूरा प्रयास किया था । बालक में यदि केवल प्रतिभा हो, परंतु उसे सही वातावरण और प्राशिक्षण न मिले तो उसका उचित विकास नहीं होता । बुद्धिमान अभिभावक बालक को अच्छे संस्कार देते हैं, शिक्षा और अच्छे वातावरण में उनका विकास होता है ।

एक दिन की बात है, लाला गांगटे दूसरे बच्चों के साथ घर से घूमने निकला । सारे बच्चे खेलते–कूदते बस्ती के पास बने तालाब के किनारे पहुँचे । वहाँ थोड़ी देर बैठकर दूसरे बच्चों ने दौड़ प्रतियोगिता प्रारंभ की । वे सभी वहाँ से दो फर्लांग पर स्थित बौद्ध मंदिर की ओर एक साथ दौड़ पड़े । तालाब के किनारे खड़ा लाला उन्हें दौड़ते हुए देखकर प्रसन्न हो रहा था । इस दौड़ में उसने भाग नहीं लिया था । इसका कारण था डेढ़ वर्ष का उसका भाई चोंचो । जब वे खेलने आए थे तो चोंचो भी उससे लिपट गया था और उसकी गोद से उतरा ही न था । लाला ने उसे जबरदस्ती उतारने की कोशिश की तो उसकी माँ बोली–'लाला ! इस समय मैं घर के काम में जुटी हूँ । तुम

इसे रोते हुए छोड़ जाओगे तो यह मुझे तंग करेगा । अच्छा हो तुम इसे भी खिला लाओ ।'

तब लाला चोंचो को लेकर घर से निकल आया था । चोंचो भी बहुत से बच्चों के बीच में बड़ा प्रसन्न था । कभी वह ताली बजाकर नाचता तो कभी किलकारी मारकर हँसता । बच्चों को भागते देखकर चोंचो को भी बड़ा अच्छा लग रहा था । वह भी जबरदस्ती लाला की गोद से उतर आया और वहीं इधर-उधर भागने लगा । पर यह क्या ? जैसे ही दूसरे बच्चे आँख से ओझल हुए, लाला ने चोंचो को देखने के लिए अपनी गर्दन मोड़ी तो उसे गायब पाया । लाला ने इधर-उधर गर्दन दौड़ाई, पर वहाँ कोई भी न था । वह बिना समय खोए तालाब के किनारे दौड़ चला । वहाँ उसने देखा कि चोंचो डूब रहा है, बस उसके सिर के बाल ही पानी के ऊपर थे । लाला ने जल्दी से उसके बाल पकड़कर खींचने की कोशिश की पर उसका हाथ न पहुँचा । उल्टे वह पानी के बहाव के साथ दूर छिटक गया । पलभर के लिए लाला सहमा कि चोंचो की यह स्थिति और आसपास कोई नहीं, पर शीघ्र ही उसने अपने को नियंत्रित किया । संकट की उस घड़ी में भी लाला ने बिना धैर्य खोए बुद्धिमानी से काम लिया । वह समझ गया था कि इसे बचाना अब उसके बस की बात नहीं है । लाला तुरंत तालाब के सामने बने घर में घुस गया । वहाँ एक आदमी का हाथ पकड़कर खींचते हुए बोला-'जल्दी कीजिए ! तालाब में एक बच्चा डूब रहा है ।'

लाला की घबराई हुई सूरत देखकर वह आदमी तुरंत भागा चला आया और सरोवर में कूद पड़ा । बच्चा तब तक तालाब के बीच में पहुँच चुका था । वह तैरकर वहाँ पहुँचा और बालक को पकड़ा । बाहर निकाल कर बड़ी देर तक उसने लाला की सहायता से उसे प्राथमिक चिकित्सा दी तब कहीं जाकर चोंचो ने अपनी आँखें खोलीं ।

तब दूसरे बच्चे भी अपनी दौड़ पूरी करके वहाँ आने लगे थे । पूरी बात जानकर वे सहम गए । एक बच्चा तुरंत भागकर चोंचो की माँ

को बुला लाया । वह आदमी उसे बच्चा सौंपते हुए बोला–'लो बहिन ! सँभालो अपना बालक । इतने छोटे बच्चे को तुम्हें घर से बाहर नहीं भेजना चाहिए और वह भी इन छोटे छोटे बालकों के साथ ।'

फिर उसने लाला की ओर इशारा करते हुए कहा–'इस छोटे बालक ने आज बड़ी सूझबूझ से काम लिया है । इसी के कारण ही बच्चे के प्राण बचे हैं ।'

वह व्यक्ति बच्चों से कहने लगा–'बच्चों ! देखा तुमने कि कठिनाई आने पर धैर्य और बुद्धि से काम लेकर ही उससे निबटा जा सकता है । मुसीबत आने पर जो घबरा जाता है वह सफलता तो खो ही बैठता है साथ ही कष्ट भी पाता है ।' फिर उसने लाला की पीठ ठोकी और उसकी बहुत प्रशंसा की ।

चार वर्ष के बालक ने डेढ़ वर्ष के बच्चे की जान बचाई, यह जो भी सुनता था आश्चर्य प्रकट करता था और साथ ही लाला की सूझबूझ की तारीफ भी । प्रधानमंत्री ने गणतंत्र दिवस के पर्व पर लाला गांगटे को अन्य बहादुर, वीर और सूझबूझ से सेवा–सुरक्षा करने वाले बच्चों के साथ पुरस्कृत किया । पुरस्कृत बच्चों में वह सबसे छोटा बालक था ।

छोटी बात-बड़ा परिणाम

आज स्कूल से आते ही शुभा ने पहला काम किया–अपने कमरे में जाकर किताबें मेज पर पटकीं और पलंग पर लेटकर फफक–फफककर रोने लगी । बहुत देर से रोका आँसुओं का बांध अब टूट चुका था । रह–रह कर शुभा की आँखों के सामने आज की घटना आ रही थी । इतना अपमान उसने कभी अनुभव न किया था । वह जितना उसे भूलने का प्रयास करती थी उतना ही वह याद आ रहा था ।

थोड़ी देर बाद उसे खाने के लिए दीदी बुलाने आयीं । 'मुझे नहीं खाना खाना–बाना ।' गुस्से में उसने कहा और करवट बदल कर लेट

गई । शुभा के लगातार रोने की बात जल्दी ही घर में फैल गई । छोटे भाई–बहिन, माँ सभी उसके आसपास इकट्ठे हो गए । माँ ने उसे उठाते हुए कहा–'शुभा ! कुछ बोलोगी भी या रोती रहोगी ?'

'कल से मैं बिलकुल स्कूल नहीं जाऊँगी ।' शुभा ने अपना निर्णय सुनाते हुए कहा ।

माँ एकदम चौंक पड़ीं । उनके मन में अनेकों दु:शंकाएँ कौंध गईं । उन्होंने पूछा–'आखिर क्यों नहीं जाओगी ? कुछ बात भी तो होगी ?'

शुभा क्रोध में जोर–जोर से बोलने लगी–'पूरी की पूरी कक्षा मुझ पर हँसे, यह मुझसे सहन न होगा ।'

माँ की समझ में कुछ बात न आई । शुभा अपनी कक्षा की सबसे प्रतिभाशाली छात्रा थी । कक्षा में सदैव प्रथम आती थी । सांस्कृतिक कार्यक्रम, वाद–विवाद प्रतियोगिता आदि में प्राय: पुरस्कार पाती थी । वह पाँच वर्ष से इसी विद्यालय की छात्रा थी । सभी शिक्षिकाएँ उसे जानती थीं और स्नेह करती थीं । अपने सरल स्वभाव से उसने शिक्षिकाओं और साथियों का मन जीत लिया था । फिर भला आज पूरी की पूरी कक्षा को शुभा हँसने की, उसे दुखी करने की क्या जरूरत आ पड़ी ? यह बात शुभा की माँ न समझ पाईं । तभी शुभा की सहेली आ गई । उससे बार–बार पूछने पर सारी बातें पता लगीं । शुभा की संस्कृत की शिक्षिका नई–नई आई थीं । वह पढ़ाते समय प्राय: ही श्यामपट का प्रयोग किया करती थीं । आज उन्होंने शुभा से श्यामपट पर लिखा वाक्य स्पष्ट करने के लिए कहा । वह कक्षा में यद्यपि प्रथम पंक्ति में बैठी, पर श्यामपट न पढ़ सकी । शिक्षिका को गुस्सा आ गया और बोलीं–'क्यों ! अभी तो ठीक–ठीक बोल रही थी । अब साधारण बात भी नहीं बता सकती । वाक्य को बार बार पढ़ो, अर्थ अपने आप स्पष्ट हो जाएगा ।'

शुभा चुपचाप खड़ी रहीं । शिक्षिका का गुस्सा बढ़ता जा रहा था । वह समझ रही थीं कि शुभा उनकी अवज्ञा कर रही है । उन्होंने

कक्षा की दूसरी लड़कियों से श्यामपट पढ़वाया । सभी ने ठीक ठीक पढ़ दिया । फिर वे शुभा से बोलीं–'चलो अब पढ़ो ।'

तब तक शुभा की सहेली ने, जो उसके पास बैठी थी श्यामपट पर लिखे वाक्य अपनी कापी पर उतार लिए थे । शुभा ने उसकी कापी से वे पढ़ दिए । 'ठीक है । अब श्यामपट से पढ़ो ।' शिक्षिका ने आदेश दिया । शुभा चुप खड़ी रही, पर शिक्षिका थी कि आज उसके पीछे ही पड़ गई थीं । वे शुभा को बार बार श्यामपट पढ़ने का आदेश दे रही थीं । संभवतः उन्हें कुछ आशंका थी और वे सही बात जान लेना चाहती थीं । उन्होंने शुभा को श्यामपट के पास बुलाया और उसे पढ़ने के लिए कहा । निकट से उसने सही–सही पढ़ लिया । 'अब क्या बात हो गई ?' शिक्षिका ने उलाहना दिया तो सारी कक्षा जोरों से हँस पड़ी । अंतर्मुखी शुभा को यह बहुत ही बुरा लगा । अपमान और क्षोभ से उसका मुँह लाल हो गया । वह गर्दन झुकाकर खड़ी रही तभी फिर शिक्षिका ने कहा–'जाओ ! इसे अपने स्थान से पढ़ो ।'

शुभा चुपचाप अपनी कुर्सी के पास आ गई और सिर झुकाकर खड़ी हो गई । वह रोने रोने को हो आई । संस्कृत की शिक्षिका उसकी कक्षाध्यापिका भी थीं । वे उससे सदा ही स्नेह और सम्मानपूर्ण व्यवहार करती थीं । शुभा समझ ही नहीं पा रही थी कि आज उन्हें क्या हो गया है ? तभी उसकी सहेली ने खड़े होकर कह दिया–'इसे दूर का साफ दिखाई नहीं देता ।'

शिक्षिका तो इसी बात को जानने और सुनने की प्रतीक्षा कर रही थीं । वे बोली–'ठीक से दिखाई नहीं देता तो आँखें डाक्टर को दिखाओ, चश्मा लो । लापरवाही करने से तो और परेशानी बढ़ेगी । मैं बार–बार तुम्हीं से इसीलिए पढ़वाना चाहती थी कि जिससे सही बात पता लग सके ।

कक्षा से जाने से पहले शिक्षिका ने शुभा को भी अपने साथ बुला लिया । शुभा को विवश होकर जाना पड़ा । मन ही मन वह बहुत डर

रही थी कि उसे अब न जाने क्या सुनना पड़ेगा ? पर वह कर भी क्या सकती थीं ? शिक्षिका के आदेश का पालन तो करना ही था ।

शिक्षिका लॉन की ओर बढ़ चली । वहाँ वे एक कोने में खड़ी हो गयीं और कहने लगीं–'शुभा आज की बात का बुरा मत मानना । मैं तो तुम्हारी हितैषी हूँ । तुम्हारी आँखें बहुत खराब हो रही हैं । लापरवाही करोगी तो तुम्हारा नंबर बहुत बढ़ जाएगा । बताओ तो भला अभी तक तुमने किसी आँखों के डाक्टर को क्यों नहीं दिखाया ? तुम्हें तो दूर की वस्तुएँ देखने में हर समय की परेशानी होती होगी ।'

सहानुभूति पाकर शुभा की आँखें छलछला उठीं और रूठे कंठ से बोली–'मैंने घर में एक बार कहा था । सबने यों ही टाल दिया था ।'

शिक्षिका उसके कंधे थपथपाते हुए बोलीं–'कोई बात नहीं आज फिर कहना । यदि फिर भी ध्यान न दिया जाए तो कल मुझे बताना । मैं तुम्हारे अभिभावकों के लिए पत्र लिख दूँगी ।'

शुभा जब वापस लौट कर आई तो कक्षा की दो–चार शरारती लड़कियों ने शुभा की नकल बनाई और उसे छेड़ा । शुभा को इससे बहुत ठेस लगी । वह जैसे–तैसे घर आई । वहाँ वह अपने आपको रोक न सकी । और लगी फूटफूटकर रोने । माँ ने उसे बहुत समझाया और दूसरे दिन आँखों के अस्पताल भेजने का वायदा कर जैसे तैसे चुप किया ।

शुभा दिन भर बड़ी अन्यमनस्क रही । उसने ठीक से खाना भी न खाया । माँ ने पूछा कि उसने पहले यह बात क्यों नहीं बताई, तो उसने रूखे स्वर में कहा–'मेरी बात को सुनने–समझने की फुरसत किसे है ?'

तभी सहसा माँ को याद आया कि दो वर्ष पहले शुभा ने अपनी बड़ी बहिन को बतलाया था कि उसे दूर की वस्तुएँ धुँधली दिखाई देती हैं । उन्हीं दिनों शुभा की दीदी और भैया ने भी चश्मा लिया था।

तब शुभा की बुआ भी वहीं आई हुई थीं । उन्होंने कठोरता से कहा था कि आँखें तो ठीक हैं परंतु भाई–बहिनों का चश्मा देखकर उसे भी चश्मा लगाने का शौक चढ़ रहा है । शुभा को यह बहुत बुरा लगा था । 'ठीक है, अब मुझे किसी से कुछ कहना ही नहीं ।' उसने मन ही मन सोच लिया था ।

शुभा की कठिनाई का किसी को अनुमान तक न था । उसे घर में ही दूसरे की वस्तुएँ दिखलाई नहीं देती थीं । बड़े हॉल की ऊँची दीवार पर एक बड़ी घड़ी टँगी थी । शुभा से जब कोई समय देखकर आने के लिए कहता तो वह बात को इधर उधर कर देती । उसे घड़ी देखनी न आती हो यह बात नहीं थी, पर जब घड़ी के अक्षर और सुइयाँ दिखाई दें तभी तो वह बताए । सब तो यही समझते थे कि उसे घड़ी देखनी नहीं आती । उससे छोटे भाई बहिन जब समय बता देते तो उनकी प्रशंसा होती और शुभा का तिरस्कार । वह अंदर ही अंदर घुट कर रह जाती ।

एक बार शुभा के ताऊजी उसके सभी भाई–बहिनों को सरकस दिखलाने ले गए । वे सबसे आगे बैठे थे, पर शुभा को कुछ भी साफ दिखलाई न दे रहा था । शुभा की दादी उसकी परेशानी को थोड़ा–थोड़ा समझती थीं । उन्होंने दया कर दो–चार बार बीच–बीच में थोड़ी–थोड़ी देर के लिए शुभा को अपना चश्मा दे दिया था, जिससे वह कुछ देख पाई थी ।

वह दूर की वस्तुएँ देखने के लिए अपनी आँखें सिकोड़ लेती । शुभा की सहेनियाँ उसे 'चुंधी–चुंधी' कहकर चिढ़ातीं । पढ़ते समय भी वह किताब या कापी बहुत पास रखकर पढ़ती । जो लड़कियाँ शुभा से चिढ़ती थीं वे आपस में सदा उसे 'अंधी' ही कहा करतीं । अतएव शुभा दूसरों के सामने पढ़ने से भी कतराती । कक्षा में भी शिक्षिकाएँ श्यामपट पर जो लिखतीं, वह शुभा सदा पास बैठी अपनी सहेली की कापी से उतारा करती । वह कुशाग्र बुद्धि की थी इसलिए कक्षा में उसे बहुत अधिक कठिनाई न हुई थी । जैसे

तैसे गाड़ी चल रही थी । उस अंतर्मुखी लड़की ने स्वयं कठिनाई सहकर भी दुबारा किसी से कुछ न कहा था । अपने माता–पिता पर उसे मन ही मन बहुत गुस्सा आता था, पर वह मुँह से कभी कुछ न बोली । उसके पिता अपनी नौकरी और दूसरे कामों में व्यस्त रहते । सुबह के निकलते तो रात में ही वापस आते । बच्चे उनसे बात कहते डरते भी थे । शुभा की माँ सारे दिन घर के धंधों में व्यस्त रहतीं । दोनों को निकट से देखने जानने की फुरसत नहीं थी ।

जिस बात को शुभा दूसरों की दृष्टि से वर्षों से छिपाती चली आ रही थी वही आज अचानक इस प्रकार अपमानजनक रूप से खुल गई थी । अंतर्मुखी स्वभाव की हठीली लड़की कक्षा की उस हँसी को भूल न पा रही थी । उसका मन कह रहा था कि कभी अपनी साथिनों और शिक्षिकाओं के सामने न पड़े । आज उसने खाना भी नहीं खाया था । माँ से दृढ़ शब्दों में कह दिया था–'आँखें दिखाकर ही खाना खाऊँगी और तभी स्कूल जाऊँगी ।'

अब शुभा के माता–पिता को भी बड़ा पछतावा हुआ कि उन्होंने बच्चों की बात पर पहले ही ध्यान क्यों नहीं दिया ! बच्चा जो कुछ कहता है उसकी सच्चाई की परख तो करनी ही चाहिए । शुभा जैसे अंतर्मुखी स्वाभाव के बच्चे अपने आपको अपमानित अनुभव करने पर किसी बात को दुहराते नहीं, भले ही उनकी कितनी ही हानि क्यों न हो जाए ? माता–पिता को बच्चों का स्वभाव अच्छी प्रकार से परखकर उनके साथ व्यवहार करना चाहिए ।

साहस की जीत

शरद आठवीं कक्षा का छात्र था । वह मन लगाकर परिश्रम से पढ़ता । उसकी माँ उसकी पढ़ाई का बहुत ध्यान रखतीं । वे स्वयं प्रतिदिन उसे घर पर भी पढ़ाया करतीं । शरद अपनी कक्षा में सदा प्रथम आता ।

शरद की माँ न केवल उसे पढ़ातीं अपितु उसके हर व्यवहार पर ध्यान देतीं, उसे अच्छी बातें सिखातीं, अच्छे विचार देतीं । शरद भी अपनी माँ को प्रतिदिन अपने संगी–साथियों की हर बात भी बता देता था ।

शरद की कक्षा में नवीन नाम का एक छात्र था। उसका मन पढ़ाई में कम लगता था । उसका मुख्य काम था–शरारत करना, इधर–उधर घूमना, स्कूल में पैसे बिगाड़ना । अच्छे लड़के उससे दूर रहते थे । शरद भी नवीन से अधिक संबंध न रखता था । उसकी माँ ने उसे समझा दिया था कि वह नवीन से अधिक बातचीत न किया करे ।

नवीन जानता था कि शरद के पिता उच्चपद पर हैं । वह धनी परिवार का लड़का है अतएव वह सदा उससे बातें करने की, घुलने–मिलने की कोशिश करता, पर शरद का रुख उसके प्रति बड़ा ही उपेक्षा भरा था ।

तब नवीन शरद से मेलजोल बढ़ाने में सफल न हो पाया तो उसने दूसरा उपाय सोचा । एक दिन शरद का मित्र स्कूल नहीं आया था । उस दिन वह अकेले ही घर लौट रहा था । तभी पीछे से आता हुआ नवीन उससे कहने लगा–'ओह शरद ! आज मैं भी तुम्हारे साथ ही चलूँगा । मेरे मामाजी उधर ही रहते हैं ।'

'जरूर चलो ।' शरद ने कहा । कोई रास्ते में साथ चले तो उसे भला आपत्ति भी क्या हो सकती है ।

सहसा ही चलते–चलते नवीन कुछ सोचते हुए बोला–'अरे ! माँ

का बताया एक जरूरी काम तो भूल गया था । बस एक मिनट लगेगा, मैं अभी आया ।' कहते हुए वह एक गली की ओर मुड़ने लगा । फिर शरद की ओर मुड़कर बोला–'यार ऐसा करो कि तुम भी मेरे साथ ही आ जाओ और वहीं से एक छोटे रास्ते से हम निकल चलेंगे ।'

शरद उस गली से अधिक परिचित न था । 'यहाँ से कौन–सा रास्ता जाता है ?' शरद ने पूछा ।

'आओ दिखाऊँ ।' कहकर नवीन ने आग्रहपूर्वक उसका हाथ पकड़कर खींच लिया । शरद नवीन के पींछे पीछे चलने लगा । जैसे ही वह उस सुनसान गली के मोड़ पर पहुँचा तो लगा कि पीछे से किसीं ने उसकी नाक पर कपड़ा रखा है । शरद ने उसे हटाकर पीछे मुड़कर देखना चाहा, पर तभी उसे चक्कर आ गया और वह गिर पड़ा ।

शरद को जब होश आया तो उसने अपने आपको अपंरिचितों के बीच में पाया । भयंकर सूरत के चार आदमी उसे घेरे हुए बैठे थे । उनका नेता–सा लगने वाले एक व्यक्ति ने शरद को घूरकर देखा और बोला–'देखो ! तुम यहाँ से भागने की कोशिश न करना । यहाँ चारों ओर शिकारी कुत्ते हैं । भाग तो न सकोगे, पर तुम्हारी बोटी–बोटी नुच जाएगी । यदि जीवित रहना चाहते हो तो जैसा हम कहें वैसा करते जाओ ।''

शरद समझ गया कि वह लुटेरों के चंगुल में फँस गया है । उसका हृदय काँपने लगा, माथे पर पसीना झलक उठा । उसने अपनी आँखें बंद कर लीं । परंतु दूसरे ही पल उसने विचार किया कि यदि मैं घबरा जाऊँगा, धैर्य और साहस से काम न लूँगा तो कभी इनके चंगुल से छूट न पाऊँगा । हिम्मत हारने से तो बनता हुआ काम भी बिगड़ जाता है । तभी एक व्यक्ति ने उसे पानी का गिलास पकड़ाया, शरद गटागट पानी पी गया । उसे कुछ तसल्ली सी लगी, तभी उनका नेता उसके सामने आया । उसने शरद के हाथ में कागज

और पैन थमाया तथा बोला–'यदि तड़फ–तड़फ कर मरना नहीं चाहते और वापस घर जाना चाहते हो तो जो कहा जाए वह चुपचाप ही लिखते जाओ ?'

शरद ने उसकी बात मांन लेनी ही ठीक समझी । उस व्यक्ति ने शरद की ओर से उसके पिता को पत्र लिखाया कि वह डकैतों के कब्जे में है । यदि वे उसका जीवन चाहते हैं तो निश्चित स्थान पर चुपचाप एक लाख रुपए रख जाएँ । यदि धोखा देने का प्रयास किया गया या पुलिस को सूचना दी गई तो उसे सता–सताकर मार दिया जाएगा । एक सप्ताह तक उत्तर मिल जाना चाहिए । फिर लुटेरे ने शरद को धमकाते हुए कहा–'अब तुम सही–सही अपना पता लिख दो । यदि सप्ताह भर के अंदर इसका उत्तर न आया तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है ।'

शरद बोल उठा–'नहीं ! मैं मरना नहीं चाहता । मैं सही पता ही लिखूँगा ।'

शरद ने लुटेरों के कहने के अनुसार पत्र तो लिख दिया, पर, वह सोचने लगा कि पिताजी इतना पैसा कहाँ से लाएँगे ? इन लुटेरों को मुफ्त का पैसा क्यों मिले ? नहीं, मैं ही यहाँ से छूटने का कोई उपाय सोचूँगा । जीवन होगा तो बच जाऊँगा ।'

शरद ने दूसरे दिन से उन सभी की गतिविधियों को अच्छी प्रकार से देखना आरंभ कर दिया । शरद ऐसे दिखलाता जैसे वह बहुत डरा और सहमा हुआ है । वह उन व्यक्तियों से बड़ी विनम्रता से बात करता, आगे बढ़कर उनका काम करने की कोशिश करता । उसने पाया कि चार व्यक्ति तो अधिकतर बाहर रहते हैं । वे प्रायः सुबह होते ही निकल पड़ते । रात में भी कभी लौटते, कभी नहीं । उस खंडहर में केवल एक व्यक्ति रह जाता था। वही वहाँ की पूरी निगरानी रखता । शरद ने चार–पाँच दिन में ही अपने अच्छे व्यवहार से उस व्यक्ति को अपने विश्वास में ले लिया । वह उसका अधिक से अधिक काम कर दिया करता और उसकी सेवा करता । कुत्तों को

भी स्वयं ही खाना डालता । इस प्रकार वे भी उससे हिल गए ।

एक दिन दोपहर में वह व्यक्ति खा–पीकर लेटा था तो उसको कुछ झपकी लग गई । शरद कई दिनों से मौके की तलाश में था । आज उसे आए हुए छठा दिन था । अब शरद ने अधिक विलंब करना उचित न समझा । उसने कुत्तों को जंजीर से बाँध दिया, फिर बड़े धीमे से उसने सोए हुए व्यक्ति के तकिए के नीचे से दरवाजे की चाबी निकाल ली । धीरे से ताला खोलकर वह दबे पैरों बाहर निकल आया । शरद ने बहुत धीरे से दरवाजा बंद कर दिया । उसने चारों ओर बड़ी चौकन्नी निगाहों से देखा, फिर लगा वह बेतहाशा भागने ।

आधा घंटे तक लगातार भागने के बाद शरद को बस्ती का रास्ता दिखलाई दिया, वह उसी ओर बढ़ गया । कुछ देर चलने के बाद शहर में आ गया उसे सामने से एक नगर सेवा बस आती हुई दिखलाई दी । शरद दौड़कर उसी में चढ़ गया । उसने बस में घुसते ही कंडक्टर से कह दिया कि वह कृपा करके थाने पर उतार दे । वह बड़ी कठिनाई से बदमाशों के चंगुल से छूटकर आया है । इस समय मेरे पास पैसे भी नहीं हैं । यदि आपने मेरी सहायता न की तो बदमाश उसे फिर पकड़कर ले जाएँगे । कंडक्टर को उसकी बात सुनकर दया आ गई । उसने शरद को बस में बैठा लिया और थाने पर छोड़ दिया ।

शरद ने थानेदार को सारी बात बताई । पुलिस भी बच्चों को पकड़ने वाले गिरोह को बहुत दिनों से खोज रही थी । थानेदार ने तुरंत ही अनेक सिपाहियों को हथियार देकर शरद के साथ भेज दिया ।

शरद उन्हें रास्ता बतलाता गया । सिपाहियों ने जीप को बदमाशों के अड्डे से बहुत पहले ही झाड़ियों में रोक दिया जिससे उनकी निगाह उन पर न पड़े । अब वे पैदल ही शरद के पीछे–पीछे चले । उन्होंने खंडहर के पास जाकर घेराबंदी कर ली । कुछ ही

सिपाही अंदर गए । वहाँ कोई न था । उन्होंने अनुमान लगाया कि संभवतः मोटा व्यक्ति शरद को खोजने गया होगा । सभी छिपकर बैठ गए । आधी रात बीतने पर गिरोह आया । उसने सोचा भी न था कि यहाँ पुलिस घेरा डाले बैठी है । आते ही पुलिस ने उन सबको हथकड़ियाँ पहना दीं ।

सभी अपराधियों को थाने पहुँचा दिया गया । वहाँ उनकी बहुत ही पिटाई की गई । पिटाई हो जाने पर उनमें से एक व्यक्ति ने सारा भेद खोल दिया । वह बच्चों को चुराने वाला एक कुख्यात गिरोह था उनके बताने पर दूसरे स्थान से कुछ बच्चे भी बरामद किए गए थे । इन्हें लूला–लंगड़ा बनाकर इनसे जबरदस्ती भीख मँगवाई जाती थी ।

थानेदार और सभी सिपाहियों ने शरद की बहुत प्रशंसा की । उसे सम्मान सहित घर पहुँचाया गया । शरद के माता–पिता ने उन्हें देखते ही हृदय से लगा लिया । बेटे को सकुशल पाकर उन्हें लगा जैसे उनके प्राण ही लौट आए हों । थानेदार ने जब शरद की बहादुरी और सूझबूझ की सारी बात बताई तो वे खुशी से झूम उठे ।

अपराधियों के पूरे समूह को जेल भेज दिया गया । वहाँ उन पर मुकदमा चला और कड़ी सजा दी गई । खोजबीन करने पर पता लगा कि नवीन के पिता भी उस गिरोह से संबंधित थे । नवीन लड़कों को बहला–फुसलाकर ले जाता था और वे बदमाश उन्हें पकड़ लेते थे । पुलिस ने नवीन को भी इस अपराध के लिए कड़ी सजा दी ।

बदमाशों के चंगुल से छूटे हुए अपंग बच्चों को उनके माता–पिता के पास भेज दिया गया । सभी ने शरद की बहुत सराहना की । उसके साहस और बुद्धिमानी के कारण अपराधी पकड़े गए थे और अनेक बच्चों की रक्षा हुई थी । ऐसे ही बच्चे देश, समाज और राष्ट्र के होनहार सपूत हैं । जिन्हें देखकर भारत के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना निखर जाती है ।

भटकती राहें

सोहन अच्छे खाते–पीते घर का लड़का था । यों उसके घर में कोई अभाव न था, पर उसके पिता की आदत थी कि सदा घर में झगड़ा और गाली गलौज करते । वे उसकी माँ से प्रायः ही बात–बेबात के लड़ते रहते । जब–तब वे पत्नी पर हाथ भी उठा देते । वह भी गुस्से में भरकर जोर जोर से चीखती–चिल्लाती, हाथ–पैर पटकती । सोहन के घर में ऐसा लगभग प्रतिदिन ही होता । माता–पिता के झगड़े में बच्चे सहमे से खड़े रहते । उनके कोमल मन पर उसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता । माता–पिता भी आपसी कलह में उलझे रहते । उन्हें बच्चों की अच्छी तरह देखभाल करने का समय ही नहीं मिलता ।

किशोर सोहन माता–पिता के इस व्यवहार से बड़ा ही सहम गया था । उसे घर पर रहना अच्छा न लगता । घर पर कभी माँ अकेले में बड़बड़ातीं, कभी वे सोहन और उसके भाई–बहिनों पर खीज उतारतीं और कलह करतीं । सोहन स्कूल से आकर गली के बच्चों के साथ घूमता रहता । घर पर बैठकर पढ़ने में भी उसकी रुचि नहीं रही थी । कारण था घर का अशांत वातावरण । माँ यह नहीं सोचती थी कि बच्चों को पढ़ने बैठाऊँ और कलह न करूँ । दूसरे कलहपूर्ण वातावरण के कारण सोहन का मन भी पढ़ाई से हट गया था । सोहन न घर पर पढ़ता और न स्कूल का काम ही पूरा करके ले जाता । परिणाम यह हुआ कि वह पढ़ाई में पिछड़ने लगा । स्कूल में उसे खूब डाँट पड़ती, पर वह उसकी परवाह न करता । स्कूल में भी वह ऐसे बच्चों के साथ रहने लगा था जो पढ़ने में बुद्धू थे । वे सभी कक्षा में अध्यापकों की डाँट खाते, मार खाते, अच्छे बच्चों को तंग करते । वे एक ही कक्षा में कई वर्ष तक पड़े रहते ।

एक दिन की बात है कि सोहन के माता–पिता आपस में झगड़

रहे थे । उसके पिता ने गुस्से में भरकर माँ को जोर से धक्का दिया । उनका सिर खंभे से जा टकराया और वे तुरंत ही बेहोश हो गईं । उनकी नाक से बहुत खून निकला और कुछ ही क्षणों में उनके प्राण निकल गए ।

इस घटना से सोहन के पिता भौंचक्के रह गए । उन्होंने तो कभी सपने में भी न सोचा था । उनके मस्तिष्क पर इसका गहराई से प्रभाव पड़ा और वे पागल हो गए । अब सोहन और उसके भाई–बहिन अनाथ हो गए । माँ मर चुकी थी, पिता पागल हो गए थे । बच्चों की देखभाल करने वाला कोई भी न था ।

यह समाचार सुनकर सोहन के रिश्तेदार आए । पिता को पागलखाने में भर्ती करा दिया । सोहन के एक भाई और एक बहिन को उनकी बुआ अपने साथ ले गईं । सोहन को उसकी मामी ले आयीं । उन्हें सोहन से न कोई सहानुभूति थी, न लगाव । उन्होंने तो बस लोकलाज के कारण ऐसा किया था। सोहन से उन्होंने खूब काम लेना प्रारंभ कर दिया । घर का नौकर हटा दिया गया । सोहन को दो पल भी चैन से न बैठने दिया जाता, तिस पर मामी हर समय दुत्कारती रहतीं ।

सोहन मामी के घर दो–चार दिन में ही परेशान हो उठा । महीनाभर उसने जैसे तैसे काटा और एक दिन मौका देखकर वह घर से भाग निकला । वह स्टेशन पर परेशान–सा घूम रहा था, सोच रहा था कि कहाँ जाऊँ ? तभी एक व्यक्ति उसके पास आया और पूछने लगा कि तुम परेशान दिखते हो । क्या अपने परिवार से बिछुड़ गए हो ? सोहन को पता न था कि बच्चों और किशारों को फुसलाकर गलत रास्ते पर ले जाने वाले व्यक्ति इसी भाँति जगह–जगह घूमा करते हैं । वह रुँआसा होकर बोला–'कैसा परिवार ? किससे बिछडूँगा मैं भला ? मैं तो अब इस दुनियाँ में बिलकुल ही अकेला हूँ ।'

'मेरा भी इस संसार में अपना कोई कहा जाने योग्य नहीं है ।

यदि तुम्हें अच्छा लगे तो तुम मेरे साथ रह सकते हो ।' वह व्यक्ति कहने लगा ।

सोहन को और क्या चाहिए था । उसने जल्दी से हाँ कर दी । उसके पास उस समय टिकट खरीदने के लिए पैसे भी नहीं थे । उसे डर था कि कहीं मामी के घर से कोई आकर उसे पकड़कर न ले जाए । इसलिए वह जल्दी से जल्दी उस शहर से कहीं दूर निकल जाना चाहता था ।

दोनों ही टिकट लेकर रेलगाड़ी में बैठ गए । एक दिन और एक रात के सफर के बाद वे वहाँ से दूर एक नए अपरिचित शहर में पहुँच चुके थे । वहाँ वे एक सस्ती धर्मशाला में रुक गए । दो-चार दिन वह व्यक्ति जिसका नाम स्वामी था, सोहन को घुमाता-फिराता और खिलाता-पिलाता रहा । सोहन भी उससे खूब घुल-मिल गया था । सोहन ने भी अब उस व्यक्ति को अपने विषय में सब कुछ बता दिया था ।

स्वामी सोहन से कहने लगा-'देखो ! हमारे पास जो कुछ पैसा था वह खाने-पीने में खर्च हो गया । अब यदि हमें भूखों नहीं मरना है तो कमाना पड़ेगा ।'

'मैं कल से ही तुम्हारे साथ काम पर चलूँगा भैया ।' सोहन कहने लगा ।

सोहन को यह पता न था कि स्वामी क्या काम करता है ? वह थोड़ी देर के लिए जाता था और पैसे लेकर लौट आता था । सोहन ने जब भी उसके साथ चलने की बात कही तो स्वामी ने मना कर दिया ।

'पर पहले तुम्हें काम सीखना पड़ेगा ।' स्वामी सोहन से कहने लगा ।

'कौन सा काम ?' सोहन ने पूछा ।

'वही जो मैं करता हूँ, लोगों की जेब काटने का ।' स्वामी क्रुद्ध होते हुए बोला ।

उसकी लाल आँखें और क्रोध से भरा मुँह देखकर सोहन समझ गया कि उसके सामने कोई बात न चलेगी ।

'समझ में नही आता कि आखिर इस काम के नाम से तुम इतना क्यों विदक रहे हो । ज्यादा पढ़े-लिखे हो नहीं, कौन देगा तुम्हें काम ?' स्वामी ने कहा ।

'जब पुलिस पकड़कर ले जाएगी और मार-मार कर भुर्ता बनाएगी तो इस काम को करने का पूरा मजा आ जाएगा । न बाबा न, मेरे बस का नहीं है पुलिस के डंडे खाना ।' सोहन कान पकड़ते हुए बोला ।

'मूर्ख ! मैं तुझे ऐसी तरकीब सिखा दूँगा कि पुलिस तो क्या उसका बाप भी तुझे न पकड़ सके । बहुत ही बेवकूफ है तू तो । अरे इससे अच्छी कौन-सी बात होगी ? थोड़ी मेहनत करो और चैन से कई दिन तक मौज मनाओ ।

स्वामी की बात सुनकर सोहन के मन में लालच आ गया । उसने स्वामी के साथ काम करने की स्वीकृति दे दी ।

स्वामी राहजनी और जेब काटने के लिए नए-नए तरीके खोजता रहता था । वह एक शहर में कुछ दिन रहता, लूट-पाट करता । जब पुलिस उसकी खोज तेजी से करती तो वह शहर छोड़ देता । यहाँ आकर स्वामी ने एक नया तरीका खोजा, वह बाजार से एक रसायन ले आया । जिस व्यक्ति को लूटना होता तो सोहन उसकी गर्दन पर रसायन छुला देता । वह व्यक्ति खुजली से बेचैन होकर दोनों हाथों से गर्दन खुजाने लगता, तब स्वामी उसका पर्स या सामान छीनकर भाग जाता । सोहन भीड़ में मिल जाता या स्वामी के साथ ही भाग जाता । इस तरकीब से उन्होंने थोड़े ही दिनों में काफी रुपए इकट्ठे कर लिए । सोहन को भी अब यह काम अच्छा लगने लगा था । स्वामी की संगति ने उसे विलासी, फिजूलखर्ची और आराम तलब बना दिया था ।

सोहन पूरी तरह से निश्चिंत था कि पुलिस उसे पकड़ न पाएगी । यदि पकड़ेगी भी तो स्वामी किसी न किसी प्रकार उसे छुड़ा लेगा, पर उसका यह भ्रम सिद्ध हुआ । एक दिन जब वह किसी धनी से लगने वाले व्यक्ति की गरदन पर रसायन छुला रहा था तो उसके

साथी ने सोहन को कसकर पकड़ लिया । धनी व्यक्ति चिल्ला रहा था–'पकड़ लो इसे, यह जाने न पाए । यही है वह जिसकी करतूतें रोज अखबारों में छपती हैं ।'

सोहन अचानक हुई इस घटना से हड़बड़ा गया । उसने छूटने का बहुतेरा प्रयास किया, पर उस व्यक्ति मजबूत पकड़ से हिल भी न सका । तभी उसने देखा कि उसे छोड़कर स्वामी तेजी से भागा जा रहा है । उसने एक बार भी पीछे मुड़कर सोहन की ओर नहीं देखा । अपने को अकेला पाकर सोहन घबड़ा उठा । भीड़ बढ़ती जा रही थी । गुस्से में भरे व्यक्ति चप्पल, जूते, घूँसे और लातों से उसकी ठुकाई कर रहे थे । सोहन के रोने गिड़गिड़ाने का उन पर कोई असर न था । सोहन ने जीवन में इतनी मार और इतना अपमान कभी न सहा था । आज तो लग रहा था कि भीड़ उसे मारकर ही दम लेगी । वह बुरी तरह से चीख रहा था, पर मारने वालों पर उसका कोई प्रभाव ही न था । आखिर में सोहन बेहोश होकर वहीं गिर पड़ा ।

सोहन को जब होश आया तो उसने अपने आपको हथकड़ियों से बँधा हुआ थाने में पाया । वहाँ सोहन को होश में आया देखकर थानेदार सामने आया और कड़कती आवाज में बोला–'बोल ! कहाँ है तेरा गिरोह ?'

'हुजूर ! मेरे साथ कोई नहीं है । मैं अकेला हूँ ।' सोहन स्वामी सिखाई हुई बात बोला ।

यह सीधे–सीधे नहीं बताएगा, करो इसकी धुनाई ।' थानेदार ने भृकुटियाँ चढ़ाकर कहा ।

तुरंत ही दो सिपाही आगे आए और सोहन को बैंतों से लगे पीटने । उनके आठ–दस बैंत खाकर ही सोहन तिलमिला उठा । उसे लगा कि उसकी हड्डी चकनाचूर हो गई हैं । वह तुरंत ही बोल पड़ा–'ठहरो ! अभी बताता हूँ ।' उसने थानेदार को स्वामी का पूरा पता बता दिया ।

सिपाहियों का एक दल उसी समय स्वामी को पकड़ने के लिए रवाना हो गया । वहाँ जाकर पता लगा कि पुलिस के पहुँचने से पहले ही स्वामी भाग गया है । परंतु सोहन के द्वारा बताई गई हुलिया के आधार पर सिपाहियों ने स्वामी को बीच रास्ते में ही पकड़ लिया ।

थाने में सोहन के ही सामने स्वामी की इतनी पिटाई हुई कि उसका दिल दहल उठा । सिपाहियों ने दोनों को पैरों से ठोकर मारते हुए कोठरी में बंद कर दिया । स्वामी सोहन को खा जाने वाली नजरो से देख रहा था और कह रहा था–'बाहर निकलेगा तब देखना, तेरा भुर्ता न बना दिया तो ।' वह अपने पकड़े जाने के लिए सोहन को ही अपराधी मान रहा था ।

स्वामी और सोहन दोनों पर मुकदमा चला । स्वामी को जेल भेज दिया गया और सोहन को सुधार गृह । अब सोहन की समझ में अच्छी तरह से यह बात आ गई थी कि बेईमानी और धोखाधड़ी से कमाया गया पैसा पतन के गड्ढे में धकेल देता है । उसकी अपेक्षा यह उचित है कि ईमानदारी और श्रम से रूखा सूखा ही कमाकर खाया जाए और शांति से जिया जाए । उसने प्रतिज्ञा की कि सुधार गृह से निकलने के बाद वह गलत काम नहीं करेगा, भले ही उसे भूखा ही क्यों न रहना पड़े ।

पढ़ा-लिखा किसान

घनश्याम किशोर ही था, तभी उसके पिता की मृत्यु हो गई थी । माँ और भाई–बहिनों का पूरा उत्तरदायित्व अब उस पर ही आ पड़ा । घनश्याम की पढ़ने में बहुत रुचि थी, पर अब पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी । यदि वह विद्यालय जाता तो खेतों को कौन सँभालता ? अतएव वह शहर से एम. ए. की अपनी पढ़ाई अधूरी छोड़कर गाँव आ गया ।

रिश्तेदार और पड़ौसी उससे कहते–'तुम इतना पढ़–लिख कर

खेती करोगे ? अच्छा होता कि एक–दो वर्ष और पढ़कर शहर में ही नौकरी कर लेते ।'

घनश्याम उनकी बात टालते हुए कहता–'अरे भाई ! पढ़ लिखकर खेती करने में बुराई ही क्या है ? पढ़ाई और खेती में क्या कोई बैर है ?'

'ऊँह ! खेती ही करनी थी तो पढ़ाई में इतना पैसा बरबाद क्यों किया ?' वे तुनक कर कहते ।

घनश्याम हँसते हुए कहता–'भाई ! मैं तुम्हारी बात से सहमत नहीं । पढ़ाई अपनी जगह है और खेती अपनी जगह पढ़ाई से हमारे व्यक्तित्व का विकास होता है और खेती जीविका का एक साधन है । पढ़ा–लिखा होने से अच्छी तरह खेती करने में सहायता ही मिलेगी ।'

घनश्याम की बात सुनकर वे अपना–सा मुँह लेकर रह जाते । चिढ़कर कहते–'हम ठहरे अनपढ़, गँवार, बज्रमूर्ख । तुम पढ़े–लिखे समझदार हो । जैसा ठीक समझो वैसा करो ।'

कई व्यक्तियों की निगाहें घनश्याम के खेतों पर थीं । वे सोचते थे कि दूसरे लड़कों की भाँति उसे भी शहर की हवा लग गई होगी । अब वह खेती करना पसंद न करेगा । वे उसे बहला–फुसलाकर खेत बेचने के लिए तैयार कर लेंगे और सस्ते में उसके खेत खरीद लेंगे । परंतु घनश्याम के दृढ़ निश्चय ने उस सबकी इच्छाओं पर पानी फेर दिया ।

उन्होंने घनश्याम के पिता की तेरहवीं के समय भी उसे बहुत भरा था–'देखो बेटा ! पिता का यह अंतिम कार्य है । बेचारे सदैव तुम लोगों के लिए करते रहे । अब तुम्हारा भी कर्तव्य है कि उनकी तेरहवीं खूब जोरों से करो, गाँव भर में न्यौता दो जिससे स्वर्ग में बैठी उनकी आत्मा प्रसन्न हो सके ।'

घनश्याम ने विनम्र परंतु दृढ़ स्वर में कह दिया–'काकाजी ! मैं इसमें विश्वास नहीं करता कि गाँव भर को भोज देने से पिताजी की

आत्मा संतुष्ट होगी, न ही मेरे पास इतना पैसा है ।'

'छिः ! तुम तो पढ़-लिखकर पूरे नास्तिक बन गए हो । आखिर तुम्हारे खेत किस दिन काम में आएँगे ?' जग्गू काका मुँह सिकोड़ते हुए बोले ।

घनश्याम कहने लगा-'खेत मेरी माँ के हैं । मैं उन्हें नहीं बेचूँगा । स्वर्गीय पिता के प्रति मेरी भी भावना है, मेरी भी श्रद्धा है । फिलहाल तो मैंने उनके नाम पचास रुपए मासिक की छात्रवृत्ति गरीब छात्रों को देने का निश्चय किया है ।'

'हुँह ! बेकार की बात है यह । इससे कहीं पितरों की आत्मा संतुष्ट होगी ।' जग्गू काका ने मुँह बनाकर कहा और इसी तरह लगे बड़बड़ाने ।

घनश्याम चुप रहा । उसे पता था कि गाँव के बड़े बूढ़े सभी उसकी बात का विरोध करेंगे ।

पिता की तेरहवीं के बाद से ही गाँव के बड़े-बूढ़े घनश्याम से खिंचेखिंचे रहने लगे । परंतु वह सबका सम्मान करता, सबसे अच्छा व्यवहार करता । बड़ों के द्वारा उपेक्षा और तिरस्कार किए जाने पर भी वह कभी उनकी अवज्ञा न करता ।

घनश्याम पूरी मेहनत से खेती करने में जुट गया । वह खेती से संबंधित पुस्तकें पढ़ता रहता । लोग मजाक करते-'हल चलाने में यह पुस्तकें काम नहीं आएँगी घनश्याम ।' पर उस समय वह हँसकर रह जाता । सोचता, मैं नहीं मेरी खेती ही अब उनको इसका उत्तर देगी ।

उस वर्ष गाँव में सबसे अच्छी खेती घनश्याम की हुई । सभी दंग थे कि कल का यह अनुभवहीन छोकरा कैसे बाजी मार ले गया । जग्गू काका के एक साथी से न रहा गया और उसने इसका रहस्य उससे पूछ ही लिया ।

'मैं बिलकुल ही अनुभव से रहित तो नहीं था । पिताजी के साथ खेती में काम करवाता था । खेती के मौलिक सिद्धांतों की

मुझे जानकारी थी । अब पूरा समय इसी के लिए देने पर मुझे पुस्तकें पढ़ने का अवसर मिला । मेरी अच्छी खेती मेरे पिछले अनुभव और अब पुस्तकों से मिले ज्ञान का ही फल है । हम सोचते हैं कि पढ़ाई केवल नौकरी के लिए की जाती है, पर ऐसी बात नहीं है । किताबें हमें जीवन के हर क्षेत्र की जानकारी देतीं और सहायता करती हैं ।'

घनश्याम की खेती जब कई बार अच्छी हुई तो अन्य व्यक्ति भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके । खेती के विषय में आधुनिक जानकारी पाने, उससे फसल को अच्छा बनाने के लिए अब दूसरे किसान भी उसके पास आने लगे । घनश्याम खुशी–खुशी उन्हें सब बताता । वह समय–समय पर आसपास लगने वाले कृषि मेलों में भी जाता । धीरे–धीरे दूसरे किसान भी इनकी उपयोगिता समझने लगे और घनश्याम के साथ जाने लगे ।

घनश्याम न केवल अपने विषय में ही सोचता था अपितु उसमें पूरे गाँव के लिए कुछ करने की उमंग थी । वह चाहता था कि उसके गाँव का खूब विकास हो । इसके लिए वह शिक्षा को आवश्यक समझता था । शहर में घनश्याम के कुछ व्यक्ति परिचित थे । उसने भाग–दौड़ करके गाँव में प्रौढ़ पाठशाला और अस्पताल खुलवाया । बच्चों का स्कूल गाँव में पहले से था, पर उनमें अध्यापक महीने में दस दिन ही आते थे । घनश्याम ने शिक्षा अधिकारियों से शिकायत करके उनकी पढ़ाई भी नियमित कराई । गाँव की गंदगी के विरुद्ध भी उसने अभियान छेड़ा । उसने कुछ युवकों की टोली बनाई, जो मिलकर हर सप्ताह पूरे गाँव की सफाई करती थी । साथ ही वह ग्रामीणों को घर साफ–सुथरा रखने के लाभ भी समझाती रहती थी । गाँव की सीमा पर पहले जहाँ घूरे के ढेर पड़े रहते थे वहाँ अब घनश्याम के प्रयत्न से कम्पोस्ट खाद के गड्ढे बनने लगे । अपने समवयस्क साथियों को संगठित कर उसने 'ग्राम्य युवा दल' बना लिया । इस दल ने

संकल्प लिख कि अपने गाँव को वे आदर्श गाँव बनाएँगे । मिलजुलकर परिश्रम करके वे उसकी रूपरेखा ही बदल देंगे । उनका गाँव मुख्य सड़क से लगभग दो किलोमीटर दूर था । युवकों ने हाथ में कुदाल ली और सामूहिक रूप से प्रतिदिन कुछ घंटे श्रमदान करके एक ही महीने में पक्की सड़क बनाकर गाँव को मुख्य सड़क से जोड़ दिया ।

अब गाँव के बड़े बूढ़े तथा अन्य व्यक्ति भी घनश्याम तथा युवकों से प्रभावित हुए बिना न रह सके । उन्होंने युवक दल की बहुत प्रशंसा की तथा साथ ही उन्हें रचनात्मक कार्यों के लिए हर प्रकार की सहायता देने का भी आश्वासन दिया । इससे युवकों का उत्साह बहुत बढ़ गया । अब उन्होंने गाँव के निर्माण के लिए व्यवस्थित रूप से योजनाएँ बनाईं । इसके लिए उन्होंने सरकारी सहायता का मुँह ताकना भी उचित न समझा । उन्होंने गाँव के मुखिया को अपनी योजनाएँ समझाईं । फिर एक सभा करके सभी व्यक्तियों को उन योजनाओं से परिचित कराया, साथ ही सहायता करने के लिए भी कहा । सभी ने अपनी–अपनी सामर्थ्य के अनुसार युवक दल को चंदा दिया । एक सप्ताह में ही उनके पास इतनी धनराशि इकट्ठी हो गई कि वे अपना कार्य प्रारंभ कर सकें ।

अब युवक दल तेजी से अपने काम में जुट गया । गाँव के गलियारे, खंरजा में बदल दिए गए । हर घर से बहते रहने वाले गंदे पानी की निकासी के लिए पोखर तक नालियाँ बनाई गईं । दिशा–मैदान की समस्या हल करने के लिए गाँव के बाहर स्वयं सफाई वाले शोचालय बन गए । पनघट की समस्या भी युवकों के विचार से अछूती नहीं रही । बस्ती के निकट ही छतरी वाला पक्का कुआँ बनाया गया । कुएँ के एक ओर पशु की प्याऊ तथा दूसरी ओर कुएँ की जगत से हटकर नीचे की ओर कपड़े धोने तथा नहाने का स्थान बनाया गया था ।

घनश्याम की मौसी सुमित्रा उन्हीं दिनों उसके यहाँ मेहमान बन

कर आईं । उन्होंने कस्तूरबा महिला मंगल योजना में प्रशिक्षण लिया था । गाँव के व्यक्तियों में अपने विकास के लिए उत्साह देखकर वह इतनी अधिक प्रसन्न हुईं कि वहीं रहकर महिला मंडल और बालबाड़ी चलाने की बात उन्होंने रखी । सभी ने उनकी इस योजना का हृदय से स्वागत किया । गाँव भर की महिलाएँ तो सप्ताह भर में ही सुमित्रा बहिन से बड़ी प्रभावित हो गई थीं । सुमित्रा बहिन अब उनके बीच रहेंगी, उन्हें भी अपने जैसा ही निपुण बनाएँगी । यह सोचकर उनकी प्रसन्नता की सीमा न थी ।

महिलाएँ जो खाली समय में गप्प लड़ातीं और एक–दूसरे की बुराई करती थीं, अब अपने और बच्चों के कपड़े सिलना सीखने लगीं । सूत कातना, मोमबत्ती बनाना, मंजन और साबुन आदि बनाना जैसे लघु उद्योग धंधों की भी सुमित्रा बहिन ने उन्हें शिक्षा दी, जिससे वे भी चार पैसे कमाने लगीं । भोजन खाने और पकाने की सही जानकारी, बच्चों का पालन–पोषण, अपना और परिवार का स्वास्थ्य संरक्षण, स्वच्छता, परिवार नियोजन आदि विषयों को भी उन्होंने ग्रामीण स्त्रियों और बालिकाओं को समझाया । यही नहीं, उन्होंने साक्षरता के प्रति भी उनकी रुचि जगाई । सुमित्रा बहिन ने वर्ष भर में ही रुचिकर ढंग से महिलाओं को पढ़–लिख पाने में समर्थ बना दिया । महिलाएँ उनसे इतना स्नेह और सम्मान करती थीं कि घर–परिवार की समस्याएँ निःसंकोच भाव से उनके समाने रख देतीं और उनसे सही निर्देशन पातीं । सुमित्रा बहिन के नेतृत्व से अब उन्हें अपने अधिकारों और कर्तव्यों का भी ज्ञान होने लगा था ।

इस प्रकार पूरे के पूरे गाँव का कायाकल्प होने लगा था । स्त्री–पुरुष और बालक सभी में अपनी और गाँव की प्रगति के लिए नूतन उत्साह था । वे सभी मिलजुलकर घर–परिवार की तरह रहने का प्रयास करते । शाम को सभी पंचायतघर के पास बने बड़े मंदिर के सामने इकट्ठे होकर भजन–कीर्तन गाते । इसके बाद वे एक–दूसरे की बात सुनते–समझते । कुछ परिवारों में लंबे समय से एक–

दूसरे से आपसी रंजिश चली आ रही थी । घनश्याम और गाँव के मुखिया आदि ने उन्हें समझा–बुझाकर मेल–मिलाप करा दिया । इस प्रकार गाँव का वातावरण अब स्वर्ग बन गया था ।

जग्गू काका, गोपी दादा, सिरिया चाचा जिन्होंने शुरू में घनश्याम के खेत बिकवाने की कोशिश की थी, अब वे भी गाँव के बच्चों और युवकों से चौपाल पर बैठे कहते रहते–'अरे भैया ! खूब पढ़ो–लिखो और हमारे घनश्याम जैसे राजा बेटा से बनो । धन्य है भैया मुरलीधर, जिनके सपूत ने सारे गाँव को तार दियो, उद्धार कर दिया । अरे बेटा हो तो ऐसो ही हो । बाने अपने पितर को तार दिया और सारे गाम कूँ ही सुरग बना दियो है ।'

थोड़े ही समय में घनश्याम गाँव में बहुत लोकप्रिय हो गया था । अपने अच्छे व्यवहार से उसने क्या वृद्ध, क्या साथी, क्या बच्चे सभी का मन जीत लिया । गाँव वाले उसे बहुत मानते । अनपढ़ होने से उनकी जो समस्याएँ खड़ी होतीं उन्हें घनश्याम मिनटों में हल कर देता । गाँव के बड़े बूढ़े भी अब यह अनुभव करने लगे थे कि किसान को भी शिक्षित होना चाहिए । खेती और शिक्षा में किसी प्रकार का विरोध नहीं है ।

घनश्याम जब कभी उन दिनों की याद करता है, जब गाँव के व्यक्ति उसका विरोध और तिरस्कार करते थे तो उसे मन ही मन हँसी आती है । अच्छे और नए काम के लिए जो व्यक्ति प्रयास करता है उसका प्रारंभ में तो विरोध और तिरस्कार होता है, पर जब वह अपने मार्ग पर दृढ़ रहता है तो फिर कभी न कभी दूसरे उसकी उपयोगिता समझ ही लेते हैं । अंत में अपने संकीर्ण स्वार्थ को त्याग कर लोकमंगल के पथ पर बढ़ने का साहस करने वाले व्यक्तियों का प्रारंभ में भले ही विरोध हो, परंतु जब वे दृढ़तापूर्वक अपने मार्ग पर चलते रहते हैं तो धीरे–धीरे विशाल जनसमूह उनका अनुकरण करने में ही गौरव मानता है । 

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा